मुकन्दी लाल

कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी

Presented to
Sri Prof. Ram Swarup Arya
with compliments
[illegible] 18/5/79

कलागुरु
आनन्द कुमारस्वामी

मुकन्दीलाल बारिस्टर की "कलागुरु आनन्द कुमार स्वामी" पुस्तक पर श्रीनारायण चतुर्वेदी जी का महत्वपूर्ण पत्र

प्रिय बारिस्टर साहिब,

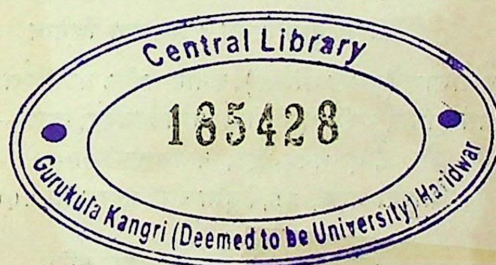
आपका ऐतिहासिक महत्व का प्रेमोपहार 'कलागुरु आनन्द कुमार स्वामी' प्राप्त कर धन्य हो गया। पुस्तक का कुछ अन्श पढ़ भी गया, शेष शीघ्र पढ़ लूंगा। आपने चित्रकला के प्रचार और पाठकों को उसे स्पष्ट करने के लिए जीवन भर अनवरत रूप से कार्य किया और आपके कार्य से कला सम्बन्धी साहित्य अत्यन्त समृद्ध हुआ किन्तु आपने इस पुस्तक को लिखकर ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया है। हिन्दी में कलागुरु के ऊपर ऐसी उत्कृष्ट पुस्तक लिखकर आपने हिन्दी का गौरव बढ़ाया है। हिन्दी संसार इसे सदैव कृतज्ञता पूर्वक याद रखेगा। आपके व्यक्तिगत परिचय तथा अनेक निकट सम्बन्ध होने के कारण उस पुस्तक का महत्व तथा प्रमाणिकता बहुत बढ़ गई है। आपकी लेखन शैली और भाषा दोनों ही विषय के अनुकूल हैं। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आपने इसे उपन्यास की तरह रोचक बना दिया है। इसमें दिये तथ्यों से पाठकों को न केवल कलागुरु की महानता का बोध होगा, प्रत्युत उसे भारतीय कला के आधार-भूत सिद्धान्तों और उद्देश्यों का भी ज्ञान होगा। शत-शत साधुवाद।

विनीत :—
(ह०) श्रीनारायण चतुर्वेदी
५६ खुर्शेदाबाद, लखनऊ

आधुनिक भारत के निर्माता

कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी

मुकन्दीलाल





प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार

माघ 1899 ● फरवरी 1978

मूल्य : 7.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित

सेल्स एम्पोरियम : प्रकाशन विभाग

सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई—400043
8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700001
शास्त्री भवन, 35, हेड्डोस रोड, मद्रास-600006

नई दुनिया प्रेस, इन्दौर द्वारा मुद्रित

प्रस्तुत पुस्तकमाला

इस पुस्तकमाला का ध्येय भारत के उन सपूतों का चरित्र-चित्रण करना है जिनका राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता-संग्राम में प्रमुख योगदान था। आने वाली पीढ़ियों को उनके विषय में जानकारी देना वांछनीय समझ कर इस पुस्तक-माला में उनकी जीवन-गाथा प्रकाशित की जा रही है। आशा की जाती है कि अब तक प्रकाशित ग्रंथों से यह अभाव बहुत कुछ दूर हुआ है। इन छोटी पुस्तकों के रूप में लब्धप्रतिष्ठ नेताओं की सरल संक्षिप्त जीवनियों को प्रकाशित किया जा रहा है। इनके लेखक अपने विषय की जानकारी रखने वाले योग्य व्यक्ति हैं। पुस्तकों का आकार 200 से 300 पृष्ठों तक सीमित रखने का प्रयत्न किया गया है। इन ग्रंथों को विस्तृत अध्ययन की सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से नहीं लिखा गया है, न ही इनका उद्देश्य अन्य सांगोपांग जीवनियों का स्थान ग्रहण करना है।

यह वांछनीय था कि इन जीवनियों का प्रकाशन काल क्रम के अनुसार किया जाए—परन्तु ऐसा संभव प्रतीत नहीं हुआ। इसमें प्रमुख बाधा यह थी कि लेखन कार्य केवल ऐसे व्यक्तियों को सौंपना था जो अपने चरित्र-नायक के विषय में साधिकार लिखने में सक्षम थे। अतः ऐतिहासिक क्रम की इन जीवनियों के प्रकाशन में उपेक्षा अपरिहार्य जान पड़ी। परन्तु आशा यही की जाती है कि प्रायः सभी लब्धप्रतिष्ठ राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां स्वल्प-काल में पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में हम सफल होंगे।

इस पुस्तकमाला के प्रधान सम्पादक श्री आर० आर० दिवाकर हैं।

प्रकाशकीय वक्तव्य

आनन्द कुमारस्वामी पर बैरिस्टर मुकन्दीलाल द्वारा लिखित यह पुस्तक हम 'आधुनिक भारत निर्माता' पुस्तक-माला के अन्तर्गत उस महापुरूष के इस जन्मशती वर्ष में प्रकाशित कर रहे हैं। इस विभाग के लिए यह गौरव का विषय है कि हमें इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत पहले हिन्दी पुस्तक का प्रकाशन करने में सफलता मिल सकी है।

आनन्द कुमारस्वामी का जन्म सौ वर्ष पूर्व श्रीलंका में हुआ था। उनके पिता श्री मुत्तु कुमारस्वामी श्रीलंका जाकर वसे हुए अनेक तमिल भाषियों में से थे और अपने समय के एक सुयोग्य वैरिस्टर थे। उन्होंने एक अंग्रेज महिला से विवाह किया था, किन्तु आनन्द कुमारस्वामी के जन्म के कुछ ही समय पश्चात् मुत्तु कुमार-स्वामी की मृत्यु हो गई। अंग्रेज महिला शिशु आनन्द कुमारस्वामी को अपने साथ लेकर इंग्लैंड चली गई, जहां आनन्द कुमारस्वामी की शिक्षा-दीक्षा हुई। वैज्ञानिक शिक्षा समाप्त करने के उपरांत युवक आनन्द कुमारस्वामी श्रीलंका सरकार के एक अधिकारी के रूप में कोलम्वो में नियुक्त हुए जहां पहली बार उन्हें भारतीय कला और दर्शन के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। धीरे-धीरे यही रुचि उनके अखण्ड भारत-प्रेम में परिवर्तित हो गई। भारतीय कला, दर्शन और संस्कृति का अनुराग उन्हें भारत के निकट सम्पर्क में खींच लाया और इंग्लैंड लौटकर उन्होंने भारतीय संस्कृति, कला और दर्शन के विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे। धीरे-धीरे वह भारतीय कला के उत्कृष्टतम विवेचक के रूप में संसार-भर में विख्यात हो गए।

प्रथम युद्ध के पश्चात् वह इंग्लैंड से अमेरिका चले गए और लम्बे ३० वर्षों तक बोस्टन कला संग्रहालय में पदासीन रहे। जीवन के अन्तिम भाग में उनका ध्यान वेदान्त की ओर आकृष्ट हुआ। वह भारतीय जीवन-दर्शन के अनन्य उपासक बन गये। शनैः शनैः उनके चिन्तन का स्वरूप प्राचीन भारतीय महर्षियों के अनुरूप होता गया। उनकी अभिलाषा भारत में आकर बसने और संन्यास आश्रम का जीवन व्यतीत करने की थी, किन्तु वह अधूरी रह गई।

कुछ लोगों को यह आशंका हो सकती है कि आनन्द कुमारस्वामी श्रीलंका में जन्मे, इंग्लैंड में शिक्षित हुए और उन्होंने अपने जीवन का लगभग आधा समय अमरीका में बिताया तथा भारत में वह अधिक काल रहे भी नहीं; फिर वह भारतीय कहां तक हुए और भारत के निर्माता किस प्रकार हुए ? किन्तु कदाचित्

लोगों के लिए यह आश्चर्य का विषय हो कि जिस सीमा तक और जितने भारतीय आनन्द कुमारस्वामी थे, उतने सम्भवतः भारत की मिट्टी में जन्मे और भारत में ही सम्पूर्ण जीवन बिताने वाले भी बहुत कम भारतीय होंगे।

संसार में आनन्द कुमारस्वामी की ख्याति मुख्यतया एक कला-विवेचक के रूप में है, किन्तु वास्तव में वह उनकी दूसरी उपलब्धियों की तुलना में नगण्य है। आधुनिक युग के आधुनिकतम देश में रहते हुए इस महापुरुष ने दुनिया के लोगों को यह बताने का साहस किया कि आज विश्व की समस्याओं का यदि कोई समाधान है, तो वह मूलभूत भारतीय दृष्टिकोण को अपनाए बिना सम्भव नहीं है। अतः आनन्द कुमारस्वामी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए एक अमरीकी विचारक ने कहा था कि आज से एक शताब्दी बाद ही संसार आनन्द कुमारस्वामी की और उनकी बातों को समझ पाएगा। तब संसार बड़े आश्चर्य से यह देखेगा कि २० वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बोस्टन संग्रहालय के एक कोने में एक ऐसा युग-पुरुष बैठा था, जो सर्वत्र विद्यमान विभीषिकाओं के प्रति सचेत करते हुए भारतीय मनीषा के मूल तत्त्व 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' का सबके भले के लिए निरन्तर मंत्रोच्चार करता था।

भारत समर्थक रोम्या रोलां ने भी आनन्द कुमारस्वामी के विषय में ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि आनन्द कुमारस्वामी उन महानतम हिन्दुओं में से थे जिन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की भांति यूरोप और एशिया के सांस्कृतिक स्रोतों से पोषण पाकर पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु-बंध निर्मित किया, ताकि सच्चे मानवीय मूल्य स्थापित हो सकें और अन्ततः मानवता जीवित रह सके।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार आनन्द कुमारस्वामी उन ऋषियों में से थे जिन्होंने संसार को भारतीय कला के अनिर्वचनीय सौन्दर्य का बोध कराया और भारतीय सांस्कृतिक निधि की गरिमा का उन्नयन किया। भारत के राष्ट्र-निर्माता और विश्व के विचारक के रूप में उनका स्थान सदैव बहुत ऊंचा रहेगा। श्रीयुत श्रीप्रकाश के शब्दों में आनन्द कुमारस्वामी उन महान भारतीयों में से थे, जिन्होंने हमारे इतिहास के एक अन्धकारपूर्ण युग में प्रकट होकर सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में अपने ऐश्वर्यशाली अतीत का गौरव पहचानने और उस पर गर्व करने का अवसर प्रदान किया जिससे कि हम अपने अतीत के कीर्तिमानों के आधार पर वैसे ही उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकें।

निःसन्देह, आनन्द कुमारस्वामी सच्चे अर्थों में भारतीय महर्षि और विश्व-नागरिक थे।

प्राक्कथन

कलागुरु डा० आनन्द कुमारस्वामी का जन्म 100 वर्ष पूर्व कला की परम्परा स्थापना हेतु श्रीलंका में हुआ। इंग्लैंड में शिक्षा ग्रहण कर भारत में अपने जीवन का कार्य आरम्भ कर वोस्टन संग्रहालय (अमरीका) में अनुसंधान और अध्ययन करते हुए व्याख्यानों, निबंधों और पुस्तकों द्वारा अपने विचार व्यक्त कर कला और अध्ययन जगत में वह अपना अस्तित्व, चिरस्थायी कर गए।

भारतीय कलाकृतियों की सराहना करना और उनके महत्व और सौन्दर्य तथा उपयोगिता की ओर शिक्षित वर्ग का ध्यान आकर्षित करना उनका ध्येय था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आनन्द कुमारस्वामी जीवनपर्यन्त घोर परिश्रम करते रहे। वह 70 वें वर्ष में अपने जीवन के अन्तिम दिन सपत्नीक उत्तर भारत में शान्तिपूर्वक व्यतीत करना चाहते थे। उनके एक शिष्य के नाते हम चाहते थे कि जगत कलागुरु हिमालय की तलहटी में बसे कोटद्वार में शकुन्तला के पुत्र भरत के जन्म स्थान कण्वाश्रम के सामीप्य में मालिनी नदी के तट पर जहां वाल्मीकि ने सीता को आश्रय दिया, जहां वाल्मीकि ने रामायण की रचना की, जहां कुश और लव का लालन-पालन हुआ और उनको रामायण कंठस्थ करवाई गई, आकर प्राचीन काल के कण्व और वाल्मीकि आदि ऋषियों की भांति रहे। किन्तु खेद है कि अपना अन्तिम समय शांतिपूर्वक व्यतीत करने का उनका संकल्प पूरा न हो सका और दैव ने हमें इस सौभाग्य से वंचित कर दिया।

--मुकन्दीलाल

भूमिका

अब से 100 वर्ष पहले श्रीलंका में भारतीय मूल के तमिल बैरिस्टर पिता और अंग्रेज माता से एक विलक्षण बालक आनन्द कुमारस्वामी का जन्म हुआ था। जब यह बालक दो वर्ष की आयु का हुआ तब उसके पिता मुत्तु कुमारस्वामी का स्वर्गवास हो गया। माता दो वर्षीय शिशु आनन्द को लेकर 6,000 मील अकेले पानी के जहाज में सफर करके करीब एक मास में विलायत पहुंची और वहां आनन्द का लालन-पालन किया। प्रारम्भिक शिक्षा के पश्चात् आनन्द कुमारस्वामी ने लंदन विश्वविद्यालय से भूगर्भ-विज्ञान में डाक्टरी की उपाधि प्राप्त की। श्रीलंका की सरकार ने आनन्द कुमारस्वामी को भू-गर्भ विभाग के निदेशक पद पर आमंत्रित किया। इस पद पर कार्य करते हुए वह भारतीय एवम् एशियाई कला की ओर आकृष्ट हुए और सात वर्ष के उपरान्त वह विलायत लौट गए। वहां जाकर अपनी मां से अनुमति लेकर सन् 1908 में भारत माता की सेवा करने के निमित्त, उसकी कला, उसका धर्मशास्त्र तथा भारतीय संस्कृति और आदर्शों को समस्त संसार के सम्मुख रखने का संकल्प लेकर आनन्द कुमारस्वामी भारत भूमि में सन् 1908 की शरद ऋतु में पधारे। तभी मुकन्दीलालजी को उनके दर्शन करने तथा शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

इस महान व्यक्तित्व आनन्द कुमारस्वामी के विषय में उनकी 70वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में अमरीका में हुए एक अधिवेशन में कला और संस्कृति के जगत-विख्यात आचार्य एरिक गिल ने कहा था—औरों ने भी साहित्य, जीवन, धर्म और लक्ष्य के कार्यों के विषय में लिखा है, औरों ने भी शुद्ध और बहुत अच्छी अंग्रेजी में लिखा है, औरों ने भी सुचारु रूप से अंग्रेजी में भाव व्यक्त किए हैं, औरों ने क्रिश्चियेनिटी, हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म की व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं, औरों ने भी चित्रकला, मूर्तिकला और सौन्दर्यशास्त्र पर लिखा है, औरों ने भी अच्छी और बुरी कला के भेद पर प्रकाश डाला है, औरों का भी ज्ञान भण्डार बहुत बड़ा है, औरों ने भी प्रेम किया है, और लोग भी दयालु और उदार हुए हैं, किन्तु मैंने

ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा जिस एक व्यक्ति में उपर्युक्त सभी गुण, प्रतिभाएं और शक्तियां एक साथ मौजूद हों।

आनन्द कुमारस्वामी की बड़ी भारी विशेषता यह है कि वह आलोच्य विषय के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ उसकी निर्माण प्रक्रिया की गहराई में जाते हैं। वह उस तत्व दर्शन और श्रद्धाभक्ति को नहीं भुलाते जो ऐसी अपूर्व कृतियों के निर्माण के मुख्य प्रेरणा स्रोत हैं। हिन्दू और बौद्ध शास्त्रों का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और यह अध्ययन तटस्थ आलोचक का अध्ययन नहीं था। उसमें विचार और रचना प्रदान करने वालों के साथ आन्तरिक सहानुभूति और विश्वास था। भारतीय कला को उन्होंने विश्व में उसकी महिमा के साथ उजागर किया। अद्भुत सूक्ष्म दृष्टिं के साथ ही गहरी आध्यात्मिक चेतना ने उन्हें कला का अप्रतिम समीक्षक बना दिया था। ऐसे महान दृष्टा कला-मर्मज्ञ को यह देश सदा कृतज्ञता के साथ स्मरण करेगा।

आनन्द कुमारस्वामी का जन्म 22 अगस्त, 1877 को कोलम्बो, श्रीलंका में हुआ और उनकी मृत्यु 7 सितम्बर, 1947 को बोस्टन, अमरीका में हुई। आनन्द कुमारस्वामी का स्वदेश-प्रेम और भारतीय विद्या एवं धर्मशास्त्र के प्रति उनकी आस्था का पता इससे लगेगा कि उन्होंने एक पुत्र राम कुमारस्वामी को आरम्भिक विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार भेजा था। चार वर्ष तक उसने वहां पर संस्कृत और भारतीय दर्शन का अध्ययन किया था। अपने छोटे पुत्र पुन्नु कुमारस्वामी को जो इंग्लैंड में तिब्बती भाषा सीख रहा था, आनन्द कुमारस्वामी ने 1947 में तिब्बती भाषा और बौद्ध धर्म का अध्ययन करने के लिए सिक्किम भेजा था।

आनन्द कुमारस्वामी से भारतीय कला के आदर्शों और कला के सिद्धान्तों की दीक्षा लेने वालों की संख्या बहुत अधिक है किन्तु उनके शिष्य, जहां तक मेरी जानकारी है, आज दो ही जीवित हैं। एक 92 वर्षीय गढ़वाल निवासी मुकन्दीलाल तथा दूसरे 84 वर्षीय मलेशिया निवासी दुरई राजा सिंगम। यह 92 वर्षीय श्रद्धेय कला समीक्षक बैरिस्टर मुकन्दीलाल इस पुस्तक के लेखक हैं। वह अपने गुरु के चरण चिन्हों पर चलते हुए निरन्तर कला और साहित्य की सेवा में लगे रहे हैं। हिन्दी में वह सन् 1898 से लिखते रहे हैं और कला समीक्षा के जन्मदाता

के समान हैं। मैं उन्हें पिछले तीस वर्षों से जानता हूं। इस वृद्धावस्था में भी उनमें युवकों का सा उत्साह है। उन्होंने हिन्दी प्रदेश में भारतीय कला के प्रति चेतना उत्पन्न करने का महान कार्य किया है। यह उचित ही था कि वह अपने महान गुरु की जन्म शताब्दी के अवसर पर श्रद्धा निवेदन के रूप में यह ग्रन्थ लिखते। अपने महान गुरु के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा है। साधारण बातचीत में भी यह श्रद्धा प्रकट होती रहती है। उनकी अद्‌भुत निष्ठा और कर्मठता युवकों को बराबर प्रेरणा देती रहती है और देती रहेगी। इस अवसर पर मैं उनके प्रति भी अपनी हार्दिक श्रद्धा निवेदन करता हूं। सोचता हूं कि कैसा होगा वह महान गुरु जिसकी प्रेरणा से यह 92 वर्षीय वृद्ध आज भी इतना सजग और कर्मपरायण है।

आनन्द कुमारस्वामी के जीवन के अन्तिम 10-15 वर्ष दर्शन--विशेषकर वैदिक दर्शन के अध्ययन में व्यतीत हुए थे। उन्होंने अपने जीवन के इस चरण में कला, संस्कृति और इतिहास के विषय में लिखना स्थगित कर दिया था और अपना सारा समय आध्यात्म, दर्शन शास्त्र और वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत करने लगे थे। इस विषय में उन्होंने स्वयं अपने शिष्य दुरई राजा सिंगम को अपने 13 दिसम्बर, 1945 के पत्र में लिखा था--पिछले 10-15 वर्षों से मैं अपना अधिकांश समय वैदिक दर्शन-शास्त्र और आध्यात्म विद्या के मनन और अध्ययन में लगा रहा हूं। मेरे सामने इतना काम है कि उसके लिए एक पूरा जीवन ही काफी नहीं है और इस समय अपने 68 वें वर्ष में हूं।

हमें आशा है कि महान गुरु के जीवन परिचय के रूप में उनके वरिष्ठ शिष्य द्वारा लिखी गई इस पुस्तक का सभी प्रेमी स्वागत करेंगे।

कला को ग्रन्थकर्ता की देन के विषय में डा. सम्पूर्णानन्द ने कहा था : मुकन्दीलाल भारत की संस्कृति के स्रोत हैं। डा. गोपाल रेड्डी ने लिखा : निष्ठावान कला-शोधक मुकन्दीलाल ने गढ़वाल चित्रकला को अमरता प्रदान की। आनन्द कुमार-स्वामी ने स्वयं स्वीकारा था कि गढ़वाल चित्रकला के जनक मोलाराम के अस्तित्व के विषय में उन्होंने पहले-पहल मुकन्दीलाल के लेख में 1909 के अक्टूबर मास के माडर्न रिव्यू में देखा था।

रादेनस्टीन ने अपनी पुस्तक 'मैन एण्ड मेमरीज़' पृष्ठ 245 पर लिखा है--एक दिन बनारस स्टेशन के पास श्री मुकन्दीलाल ने मुझे ढूंढ़ निकाला। वह इलाहाबाद

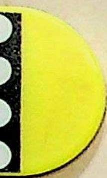
विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था जिसे डा. आनन्द कुमारस्वामी ने मेरी मदद के लिए इलाहाबाद से बनारस भेजा था। उसने कहा—मेरा उद्देश्य अपना सारा जीवन देश की सेवा में लगाना है। जिस वक्त वह मुझसे यह बात कह रहा था पास ही एक तांगेवाला किराए के मामले में ग्रामीण मुसाफिरों को परेशान कर रहा था। मैंने मुकन्दीलाल से कहा—क्या कोई एक व्यक्ति सारे देश की सेवा कर सकता है। इन बेचारे गरीब ग्रामीणों की मदद (सेवा) करने से क्यों न देश सेवा शुरू करो। उसने (मुकन्दीलाल ने) उनकी मदद की और ऐसा करने से खुश हुआ।

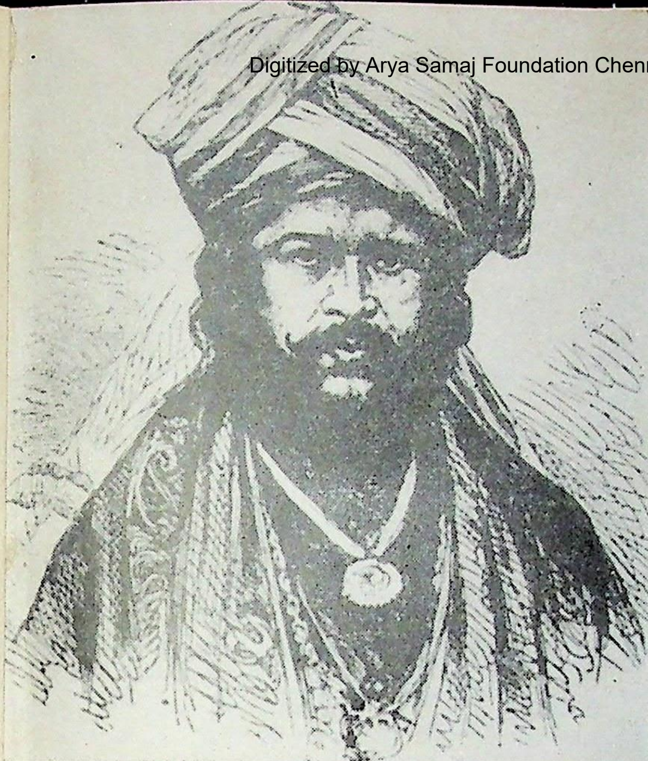
केपटाउन के गिरजाघर में जब व्याख्यान देने के लिए मुझसे कहा गया तो मैंने यही बात अपने श्रोताओं से कही थी। मैंने कहा था, "मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि क्रिश्चियेनिटी का आन्तरिक भाव पाश्चात्य देशों से दूर होता जाता है, क्योंकि पाश्चात्य देशों के निवासी दो देवताओं की पूजा करने लगे हैं, एक तो धन और दूसरा गौर वर्ण की उच्चता में विश्वास। पूर्व के अत्याचार पीड़ित निर्धन मानव-समाज में मुझे असली ईसाई मत के जितने भाव दीख पड़ते हैं उतने पश्चिम की धनवान जातियों में नहीं।" इस व्याख्यान के अन्त में मैंने कहा था : "यहां दक्षिण अफ्रीका में सोने की खानों के निकट अनेक नगर बसे हुए हैं। हिन्दुस्तानी और काफिर लोग इन नगरों से बाहर अलग मुहल्लों में बसा दिए गए हैं। लेकिन मुझे इन हिन्दुस्तानियों और काफिरों के मुहल्लों में जितने क्राइस्ट विद्यमान दीख पड़ते हैं उतने इन विशाल शहरों के भीतर नहीं दीख पड़ते। ये शहर स्वर्ण के कारण ही इतने धनवान हुए हैं और इस बुरी कमाई का पाप इनके सिर पर है। अनेक सागरों में और समुद्रतटों के निकट यात्रा करते हुए बार-बार मेरे सामने यही दुखदायी और भयंकर प्रश्न आया था कि क्या यह संभव है कि संसार के ये आधुनिक वैभवशाली राष्ट्र, जो झगड़ालू और सिर से पैर तक हथियारबन्द हैं तथा जो अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों की आत्माओं का व्यापार कर रहे हैं, बहुत दिनों तक नम्र और निरहंकारी क्राइस्ट के निवासस्थान बने रह सकेंगे? क्या अब वह समय निकट नहीं है जब वह मसीहा इन राष्ट्रों से कहेगा कि 'तुम्हारा सत्यानाश हो' और संसार की निर्धन अत्याचार पीड़ित जातियों से कहेगा—"आओ, तुम मेरे निकट आओ?"

22 अगस्त, 1977

—हजारीप्रसाद द्विवेदी

विषय-सूची





आनन्द • कुमारस्वामी के पिता मुत्तु कुमारस्वामी का चित्र जो 25 अप्रेल 1863 के इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज में छपा

आनन्द कुमारस्वामी का चित्र असितकुमार हलधर की तूलिका से। इस पर अंकित है : "जैसे मैंने उन्हें 1909-10 में देखा"

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा सितम्बर 1909 में अंकित चित्र







आनन्द कुमारस्वामी की एक अन्य मुद्रा



नन्दलाल बसु कृत रेखाचित्र। जोड़ासांको में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रशाला। 1910 या 11 के इस रेखाचित्र में बाईं ओर कुमारस्वामी तथा दाईं ओर अवनीन्द्र नाथ ठाकुर और नीचे गगनेन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल बसु दिखाई दे रहे हैं।

1. आरम्भिक जीवन

कलागुरु आनन्द केंटिश कुमारस्वामी के पिता भारतीय मूल के श्रीलंका निवासी श्री मुत्तु कुमारस्वामी थे। श्रीलंका में बसे भारतीयों का यह कुल अत्यंत प्रतिष्ठित एवं संभ्रांत माना जाता था। श्री मुत्तु कुमारस्वामी अपने समय के प्रख्यात न्यायविद हुए हैं। वह प्रथम भारतीय थे जिन्होंने सन् 1863 से 1879 तक विलायत के न्यायालयों में बैरिस्टरी की। श्री मुत्तु कुमारस्वामी ने विलायत के एक मान्य परिवार की कुमारी एलिजाबेथ क्ले बीबी (केंट निवासी विलियम जान बीबी की कन्या) से विवाह किया। जिनसे 22 अगस्त सन् 1877 ई० में कोलम्बो में आनन्द कुमारस्वामी का जन्म हुआ। दो वर्ष बाद कोलम्बो में 4 मई, 1879 को श्री मुत्तु कुमारस्वामी की मृत्यु हो गई। श्रीमती मुत्तु कुमारस्वामी अपने दो वर्ष के बालक आनन्द को लेकर अपने मायके में विलायत लौट आईं। वहां उन्होंने आनन्द का लालन-पालन और शिक्षण अपने निरीक्षण में किया।

श्री मुत्तु कुमारस्वामी एक असाधारण भारतीय थे। वह न केवल प्रथम भारतीय थे जिन्होंने लन्दन में बैरिस्टरी की बल्कि उन्होंने लन्दन में तमिल भाषा के 'अरिचन्द्र' नाटक का अंग्रेजी में अनुवाद किया और उसको महारानी विक्टोरिया को समर्पित किया था। जिसके लिए उनको सर की उपाधि दी गई। उन्होंने दो और पुस्तकें गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में लिखीं—एक का शीर्षक था दन्तयश (गौतम बुद्ध के दांत की कथा) दूसरे का नाम सुत्त निपात याने (बुद्ध भगवान के प्रवचन)। इन दोनों ग्रन्थों का उन्होंने पाली से अंग्रेजी में अनुवाद किया। यदि उनकी मृत्यु 46 वर्ष की अल्पायु में न हुई होती तो सम्भव है कि वह साहित्य और बुद्ध धर्म की न जाने कितनी सेवा करते। जिस कार्य को वह स्वयं न कर पाए, उसे उनके विख्यात पुत्र आनन्द कुमारस्वामी ने अपने 70 वर्ष के जीवन में पूरा किया और संसार को भारतीय कला, भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता का बोध कराया।

प्रारम्भिक शिक्षा

आरम्भ में आनन्द की माता ने उनके बचपन की शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया। उसके बाद 12 वर्ष की अवस्था में आनन्द कुमारस्वामी को वाइक्लिफ कालेज स्प्रिंग फील्ड में भेजा गया जहां उन्होंने 8 वर्ष तक अध्ययन किया। वह वाइक्लिफ कालेज में मानीटर और कालेज के फील्डक्लब के क्यूरेटर नियुक्त हुए। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन परीक्षा प्रथम श्रेणी में सन् 1894 में पास की। इस दौरान वह कालेज की मैगजीन 'स्टार' में लेख लिखा करते थे। उन्होंने एक निबन्ध इस विषय पर लिखा कि मांस भक्षण न शरीर की रक्षा के लिए जरूरी है न ही वह स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इस निबन्ध के लिए आनन्द को प्रथम पुरस्कार मिला था। इसी को कहते हैं, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' इससे बाल्यकाल से ही आनन्द की मनोवृत्तियों का पता चलता है।

पितृभूमि सिलोन में

वाइक्लिफ कालेज से उत्तीर्ण होने के उपरान्त कुमारस्वामी एक वर्ष के लिए पितृभूमि श्रीलंका गए और उन्होंने वहां की खनिज सम्पत्ति का निरीक्षण किया। लन्दन लौट कर विश्वविद्यालय कालिज में सन् 1897 में प्रवेश लिया। सन् 1900 में लन्दन विश्वविद्यालय से आनन्द कुमारस्वामी ने जियोलोजी और बोटेनी में प्रथम श्रेणी में बी०एस०सी० आनर्स डिग्री प्राप्त की। इसके बाद तीन वर्ष तक उन्होंने तीन वैज्ञानिक विषयों में अनुसंधान किया जिसके फलस्वरूप वह लन्दन विश्वविद्यालय के फैलो चुने गए। जहां बाद में उनको विज्ञान में "डाक्टर" की उपाधि मिली। इसके बाद उन्हें दो स्वर्णपदक विश्वविद्यालय ने प्रदान किए—एक वनस्पति विज्ञान में और दूसरा भूगर्भ विज्ञान में। उनको मैकेनिक्स में भी प्रथम पुरस्कार मिला। उसी वर्ष श्रीलंका सरकार ने उन्हें मिनरलोजीकल सर्वे का डाइरेक्टर नियुक्त किया। तीन वर्ष अर्थात 1903 से 1906 तक उन्होंने इस पद पर अनेक खोजें कीं।

इसके साथ-साथ डा० कुमारस्वामी ने श्रीलंका द्वीप की सांस्कृतिक और सामाजिक सेवा भी की। वहां उन्होंने श्रीलंका समाज सुधार समिति अर्थात 'सिलोन सोशल रिफोर्म सोसायटी' की स्थापना की। वह उसके अध्यक्ष चुने गए।

कलकत्ता यात्रा

उसी दौरान 1906 में वह छुट्टी पर श्रीलंका से कलकत्ता आए जिससे कि वह भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष और कला सम्बन्धी संस्थाओं का निरीक्षण कर सकें। उस समय कलकत्ता राष्ट्रीय गतिविधियों और कला का केन्द्र था। उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक और कला सम्बन्धी संस्थाओं का निरीक्षण किया, उनमें योगदान भी आरम्भ किया।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, और उनके बड़े भाई, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर तथा छोटे भाई समरेन्द्रनाथ ठाकुर की मैत्री प्राप्त की और उनके घर पर जोड़ासांको में उनके मेहमान रहे। उन्होंने भारतीय चित्रकला और सांस्कृतिक विषयों पर श्रीलंका तथा भारत के पारस्परिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों पर कलकत्ता में अनेक व्याख्यान दिए। कलकत्ता के शिक्षित और कलाप्रेमी नागरिकों पर उनकी विद्वत्ता का बड़ा प्रभाव पड़ा। ठाकुर परिवार उनका बड़ा गुण-ग्राहक बन गया उस समय अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय कला में नवजीवन का संचार कर दिया था और वह नन्दलाल वसु, असित कुमार हलधर प्रभृति नवीन कलाकारों को भारतीय परम्परा के आदर्शानुसार चित्रकला का अध्ययन करा रहे थे।

भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग

कलकत्ता से श्रीलंका लौट कर उन्होंने कला के प्रति अपनी अत्यधिक अभिरुचि दिखलाई। कला और राष्ट्रीयता के प्रचार हेतु उन्होंने वहां 'नेशनल रिव्यू' की स्थापना की। उस मासिक पत्रिका में भारतीय कला और राष्ट्रीयता पर उनके बड़े विचारपूर्ण लेख प्रकाशित होने लगे। उनके अनेक लेखों को मैंने भी छात्रावस्था में (1906-1907) इलाहाबाद में पढ़ा था। मुझे याद है उनमें से एक का शीर्षक था "पूर्व का पाश्चात्यकरण" (एंग्लेसाइजेशन आफ दि ईस्ट.)। उनके इस लेख पर भारत में तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी और उनके इन विचारों का बाद में लाला हरदयाल ने गुरुकुल समाचार पत्रिका द्वारा प्रचार किया। लाला हरदयाल के उन लेखों को मैंने भी गुरुकुल समाचार में पढ़ा था। हरदयाल चाहते थे कि अंग्रेजी तालीम हिन्दुस्तान से जड़ से उखाड़कर फेंक दी जाए।

आनन्द कुमारस्वामी के चित्रकला और राष्ट्रीय आदर्श सम्बन्धी उक्त लेखों का मेरे ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और मेरे मन में उनका दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हुई। मेरी यह आकांक्षा 1908 में पूरी हुई, जब वह बनारस पधारे। उनके सम्पर्क में आने का मेरे जीवन पर बहुत व्यापक प्रभाव हुआ। मुझे उनसे भारतीय कला के आदर्श और भारतीय मूर्तिकला तथा चित्रकला की विशेषता एवं महत्व समझने का अवसर मिला।

प्रतीत होता है कि आनन्द कुमारस्वामी वास्तव में भारतीय कला, संस्कृति और आदर्शों के प्रचार के लिए इस संसार में पधारे थे। श्रीलंका की सरकार की सेवा में उनका मन नहीं लगा और न उनकी सरकारी नीतियों के साथ पटी। क्योंकि वह स्वतंत्र विचारधारा वाले राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। श्रीलंका की सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर वह वापस लन्दन गए। वहां उन्होंने डाक्टरेट के लिए थीसिस लिखा जिसके लिए उन्हें लन्दन विश्वविद्यालय ने साइन्स में डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की।

राजनीति में दिलचस्पी

1908 अक्टूबर को लन्दन में उन्होंने बंगाल विभाजन आन्दोलन में भाग लिया। सभा के सभापति लाला लाजपत राय थे। सभा लन्दन के प्रसिद्ध राजनैतिक "कैक्स्टन हाल" में हुई थी, जहां कि राजनैतिक सभाएं हुआ करती थीं। इसी हॉल में हम भारतीय विद्यार्थियों ने एक सभा लार्ड सिन्हा के लार्ड बनाए जाने के विरुद्ध की थी। इस सभा को लंदन के समाचारपत्रों ने प्रमुख शीर्षक देकर छापा था—इंडियन रेवोल्यूशनरी कैक्स्टन हाल में। गोकि इस सभा के सभापति हम लोगों ने श्री मनचरजी भावानगरी को बनाया था, जो ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य रह चुके थे। इस सभा में आनन्द कुमारस्वामी ने भी भाग लिया था।

वंग विभाजन विरोध सभा में लाला लाजपत राय और विपिन चन्द्र पाल के भाषण भारत की राजनैतिक स्थिति और भारतीय जनता की आकांक्षा और भारत के भाग्य पर हुए थे।

उक्त सभा के थोड़े दिनों बाद डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी कलकत्ता पहुंचे। वहां कुछ दिन ठाकुर परिवार के साथ बिताकर वह बनारस गए जहां

वह श्रीयुत श्रीप्रकाश के पिता डाक्टर भगवान दास के मेहमान बनकर उनके घर सिग्रा में रहे। डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी के प्रति मेरा आकर्षण "नेशनल रिव्यू" और "माडर्न रिव्यू" में उनके लेख पढ़ने से हो चुका था। अब मुझको उनके दर्शन करने का और उनका शिष्य बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं प्रतिदिन उनके संसर्ग में रहकर भारतीय कला के आदर्शों, सिद्धान्तों और उनकी विशेषताओं के विषय में उनसे ज्ञान प्राप्त करने लगा।

ठाकुर परिवार से सान्निध्य

वह बनारस से कलकत्ता लौट कर जाने वाले थे। परन्तु उन्होंने अपना इरादा बदल दिया और उत्तर प्रदेश में जो तब संयुक्त प्रान्त कहलाता था कुछ दिन और रहना पसन्द किया। उन्होंने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के लिए मुझे परिचय पत्र दिया और अपना वापसी टिकट दिया कि तुम खुद कलकत्ता जाकर सभी ठाकुर बन्धुओं से मिलो—उनके और उनके शिष्यों की चित्रकला का अवलोकन करो और भारतीय संस्कृति का मनन करो, भारतीय कला के आदर्शों-उद्देश्यों का अध्ययन करो और नवीन कलाकारों को चित्रालेखन करते देखो।

इस परिचय का परिणाम बहुत अच्छा रहा। ठाकुर बन्धु न केवल स्वयं कलाकार तथा कला परम्परा के समर्थक व प्रचारक थे, उनका कला संग्रह भी बहुत बड़ा था, जो अब लालभाई कस्तूरभाई के पास अहमदाबाद में है। 1908 से लेकर 1913 तक पांच वर्षों तक मैं कई वार कलकत्ता में उनके पास ठहरा और मैंने अवनी बाबू को अपने शिष्यों को चित्रांकन सिखाते देखा।

तब यह पहला अवसर था जब मैंने उनसे चित्रकार मोलाराम और गढ़वाल चित्रकला का जिक्र किया। तत्काल उन्होंने मोलाराम के प्रपौत्र बालकराम साह (1877-1956) को मेरे द्वारा कलकत्ते बुलवाया। उन्होंने बालकराम से कुछ चित्र खरीदे। जो अब लालभाई कस्तूरभाई के संग्रह में हैं। जिनका बाद में निरीक्षण करने मैं अहमदाबाद 1949 में गया था और वहां पर मैंने गढ़वाल चित्रकला के चित्रों को पहचाना। उन चित्रों में से दो 'वन में मिलन' और 'वर्षा ऋतु का स्वागत' गढ़वाल चित्रकला में उद्धृत किए गए हैं।

सन् 1908 से सन् 1917 तक के दीर्घकाल में मुझे डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी के सम्पर्क में रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा। उसी दौरान मुझे

भारतीय कला के आदर्शों, नियमों, उसकी विशेषताओं और परम्परा के विषय में उनकी चिंतनधारा का ज्ञान प्राप्त करने का अवसर मिला। जब 1910 में डाक्टर कुमारस्वामी इलाहाबाद की विख्यात प्रदर्शनी के कला विभाग के संरक्षक नियुक्त हुए तब मैं इलाहाबाद में विद्यार्थी था। उन्होंने इस प्रदर्शनी में मुझे अपना सहायक नियुक्त किया।

मेरा कर्तव्य था, दर्शकों को भारतीय कलाकृतियां दिखाना और चित्रों की विशेषताओं और खूबियों से अवगत कराना। उन्हीं दिनों विख्यात कलाकार और उनके मित्र रौदन्स्टीन विलायत से भारतवर्ष आए। डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी ने मुझको आदेश दिया कि मैं कलाकार रौदन्स्टीन को बनारस और सारनाथ दिखा लाऊं। वहां रौदन्स्टीन साहब ने बनारस के कई दृश्य और खास कर साधुओं के चित्र बनाए।

2. भारतीय कला के अग्रदूत

आनन्द कुमारस्वामी ने चार वर्ष सन् 1908 से 1913 तक भारतवर्ष के कला केन्द्रों का भ्रमण किया और राजपूत और पहाड़ी चित्रकला का भलीभांति निरीक्षण किया तथा चित्रों का संग्रह किया। इस प्रयास के फलस्वरूप उन्होंने विलायत लौटने पर राजपूत कला पर दो सचित्र खंड 1916 में आक्सफोर्ड प्रेस द्वारा प्रकाशित किए। राजपूत कला पर इस पुस्तक के प्रकाशन में जो सेवा और सहायता मैं अपने गुरु की कर सका उसका जिक्र उन्होंने राजपूत पेन्टिग में किया है। उन्होंने लिखा है कि चित्र सम्बन्धी हिन्दी पद्यों की निरन्तर व्याख्या करके श्री मुकन्दीलाल ने मेरी जो सहायता की, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

राजपूत पेन्टिग के प्रथम खंड* में डाक्टर कुमारस्वामी ने लिखा है कि गढ़वाल चित्रकला और मोलाराम के विषय में मुकन्दीलाल का लेख जो अक्टूबर 1909 के माडर्न रिव्यू में छपा, उससे मुझे ज्ञात हुआ कि मोलाराम के पूर्वज दिल्ली से औरंगजेब के भतीजे सुलेमान शिकोह के साथ सन् 1658 में श्रीनगर गढ़वाल आए थे। आनन्द कुमारस्वामी ने मेरे द्वारा बालकराम साह को श्रीनगर से बुलवाया कि तुम अपना चित्र संग्रह लेकर इलाहाबाद आओ। बालकराम साह जो चित्र अपने साथ लाए थे उनमें से कुछ प्रदर्शनी में रखे गए थे और 6 रंगीन चित्र और कुछ रेखाचित्र आनन्द कुमारस्वामी ने बालकराम से खरीदे थे, जो अब अमेरिका के बोस्टन म्यूजियम में हैं।

कश्मीर यात्रा

इलाहाबाद की प्रदर्शनी के बन्द होने पर सन् 1911 के शुरू में कुमारस्वामी ने राजपूत और पहाड़ी कला की खोज में राजस्थान और पंजाब का दौरा किया और राजपूत तथा पहाड़ी चित्रों का संग्रह किया। तदुपरान्त वह

---

* *राजपूत पेन्टिग, पृष्ठ 23*

कश्मीर गए जहां उन्होंने अपनी खोज और अनुसंधान को लेखनीबद्ध करना शुरू किया। इलाहाबाद के कालेज में छुट्टी होने पर उन्होंने मुझे कश्मीर, श्रीनगर बुलाया। दो मास तक उनके साथ मैं हाउस बोट में रहा। कश्मीर में उनका सारा समय 'राजपूत पेन्टिग' नामक उनकी पुस्तक की तैयारी में लगा रहता था।

यह उन्हीं की कृपा है कि सन् 1911 में छात्रावस्था में मुझे कश्मीर देखने का अवसर मिला। इसके बाद 1971 अर्थात 60 वर्ष के बाद मैं फिर कश्मीर गया। कश्मीर से लौटने पर वह सन् 1912 में कलकत्ता होते हुए विलायत लौट गए।

गढ़वाल चित्रकला को पहाड़ी चित्रकला में सबसे पहले निर्दिष्ट स्थान डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी ने दिया। उन्होंने राजपूत पेन्टिग के प्रथम खंड* में लिखा है—

> कांगड़ा चित्रकला और पंजाब की अन्य पहाड़ी शैलियों से मिलती-जुलती गढ़वाल चित्रकला है, जिसकी जानकारी मोलाराम के चित्रों द्वारा हुई है। इस शैली में नायिका भेद और रुक्मिणी मंगल इत्यादि से सम्बन्धित शृंगार चित्र हैं, जिनके तीन नमूने राजपूत पेन्टिग में दिए गए हैं। गढ़वाल चित्रकला में कुछ सत्रहवीं शताब्दी के चित्र भी हैं।

संसार में कला जागृति

उन्होंने चार वर्ष भारत में कला की खोज में और भारतीय कला के सौन्दर्य और महत्व की खोज में लगाए। उन दिनों उन्होंने जो लेख 'माडर्न रिव्यू' आदि अनेक पत्रिकाओं में लिखे वे 'आर्ट एण्ड स्वदेशी' नामक उनकी पुस्तक में संग्रहीत हैं।

उक्त लेखों और पुस्तकों के प्रकाशन से और जो व्याख्यान उन्होंने भारतीय विश्वविद्यालयों में चित्रकला के सम्बन्ध में दिए उनसे भारतवासियों की आंखें खुलीं और उनको तथा संसार के कलाप्रेमियों को ज्ञात हुआ कि भारत में ईसा पूर्व तृतीय

*पृष्ठ 23

शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक जिस मूर्तिकला और चित्रकला का सृजन भारतीय कलाकारों ने किया है वह संसार में सबसे उच्च श्रेणी की है। हमारे देश के लेखकों, जिज्ञासुओं और बुद्धिजीवी लोगों का ध्यान हमारे कला-आदर्शों और हमारी कलाकृतियों की ओर आकर्षित हुआ। और कई विद्वान कला-पारखी कलाकृतियों की खोज तथा उनका संग्रह एवं अध्ययन करने लगे।

एक प्रकार से यह आनन्द कुमारस्वामी के कलानुराग और प्रयासों का ही परिणाम था कि जिन विद्यालयों में पाश्चात्य शैली की चित्रकला का अनुसरण और अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा था उनमें अब भारतीय कला के आदर्शों तथा कला की परम्परागत पद्धतियों पर विचार-विनिमय होने लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि आनन्द कुमारस्वामी के भारतीय कला संबंधी निरीक्षण, संशोधन, अनुसंधान और परिश्रम का फल यह हुआ कि भारत में कला के प्रति नवीन अभिरुचि और कला आदर्शों के पोषण का नवयुग आरम्भ हुआ। संग्रहालयों की ओर भारतवासियों का ध्यान गया। संग्रहालयों में मूर्तियों और चित्रों का संग्रह बढ़ने लगा। भारतीय कला के उन्नयन और प्रचार में आनन्द कुमारस्वामी के इस योगदान को अवश्य ही अप्रतिम माना जाएगा।

बंगला शैली के जन्मदाता श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से श्री आनन्द कुमारस्वामी का प्रथम परिचय सन् 1906 में जब कुमारस्वामी श्रीलंका से कलकत्ता आए थे, तब हुआ था। अवनीन्द्र बाबू से उनकी दूसरी भेंट जब वह लन्दन से 1908 में भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला की खोज में कलकत्ता आए तब हुई। जो प्रगाढ़ परिचय अवनीन्द्रनाथ ठाकुर से उनका दूसरी बार आरम्भ हुआ वह आजन्म रहा।

भारतीय चित्रकला के इतिहास में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का स्थान आधुनिक कलाकारों में सर्वोच्च है। आरम्भ में वह पाश्चात्य शैली में चित्रांकन करते थे। किन्तु बाद में उनका ध्यान भारतीय चित्रकला की ओर गया और उन्होंने भारतीय चित्रकला के आदर्शों और शास्त्रीय चित्रांकन के नियमों और पद्धति की परंपरा के अनुसार भारतीय विषयों पर चित्रालेखन आरम्भ किया। भारतीय चित्रकला परम्परा के अनुसार भारतीय विषयों पर अंकित

उनके इन चित्रों की ओर सर्वप्रथम कलकत्ता के गवर्नमेंट आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल मिस्टर हैवल का ध्यान आकर्षित हुआ। हैवल साहब ने लन्दन की विख्यात सचित्र पत्रिका 'स्टूडियो' में 1902, 1905, तथा 1908 में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्रों की प्रशंसा में लिखा और उनकी विशेषताओं और भारतीय चित्रांकन शैली का उल्लेख किया। साथ में उन्होंने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के पांच चित्र भी छापे। लेखों के शीर्षक थे : 'भारतीय चित्रालेखन की समीक्षा' और 'भारतीय चित्रकला की नवीन दिशाएं।' इन दो लेखों द्वारा पाश्चात्य देशों में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर विदित हुए और आनन्द कुमारस्वामी का बंगला चित्रशैली की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। भारतीय कला के निरीक्षण के लिए उनके दो बार कलकत्ता आने का कारण भी यही बना। आनन्द कुमारस्वामी ने स्वयं 1911 में "जर्नल आफ इंडियन आर्ट" में मॉडर्न स्कूल आफ इंडियन पेन्टिंग अर्थात भारतीय आधुनिक चित्रकला पर एक विस्तृत लेख लिखा जिसके द्वारा आधुनिक भारतीय चित्रकला का संग्रह कला प्रेमी पाश्चात्य देशों में भी करने लगे। यहां तक कि इंग्लैण्ड की महारानी ने भी अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का एक चित्र "तिष्यरक्षिता" (सम्राट अशोक की महारानी) बंगाल के गवर्नर द्वारा मंगवाया। आनन्द कुमारस्वामी ने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके शिष्यों के विषय में कई लेख मॉडर्न रिव्यू इत्यादि सचित्र पत्रिकाओं में लिखे। उन्होंने अपनी वृहद् पुस्तक 'मिथ्स आफ दि हिन्दूज़ एण्ड बुद्धिस्ट्स' में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके शिष्यों के बत्तीस रंगीन चित्र उद्धृत किए हैं, जिनमें से पांच अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के, दस नन्दलाल बसु के, सात क्षितेन्द्रनाथ मजूमदार के, सात वेंकेटप्पा के, दो सुरेन्द्रनाथ कर के और एक असितकुमार हलधर का है।

अवनीन्द्रनाथ की ख्याति

अवनीन्द्रनाथ से मिलने और उनकी चित्रकला देखने के लिए अनेक कला-प्रेमी उनके घर जोड़ासांको आते थे। उनमें से प्रमुख जस्टिस वुडरोफ, आर्ट स्कूल के प्रिंसीपल पर्सी ब्राउन तथा बंगाल के दो गवर्नर जेटलैंड और कारमाइकेल आते थे। उनकी चित्र प्रदर्शनी देखने भारत के वायसराय लार्ड कर्जन भी आए थे। फ्रांस की विख्यात चित्रकार कुमारी कारप्ले ने अवनीन्द्रनाथ के चित्रों को देखने के बाद लिखा था :

"चित्रकला चित्रकार की वह भाषा है, जिसे वह पेंसिल और रंगों द्वारा प्रकट करता है। चित्र में रेखाओं और रंगों के द्वारा चित्रकार के भाव और आदर्श अंकित किए जाते हैं। चित्र एक प्रकार का उपन्यास है जिसमें सौंदर्य, सजावट और लावण्य के द्वारा विचार प्रकट किए जाते हैं। चित्रकला वह भाषा है जो दूसरी भाषा में व्यक्त विचारों का प्रदर्शन करती है। कलाकार गूढ़ रहस्यात्मक भाषा में उन विचारों और आदर्शों का प्रदर्शन करते हैं जो शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किए जाते हैं। चित्रकला आत्मा की भाषा है।"*

उक्त विचार परोक्ष रूप से अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्रों की कला संवेदना का विवेचन हैं।

बंगला चित्र-शैली

बंगला चित्रशैली के कला पक्ष पर अपना मत व्यक्त करते हुए महर्षि अरविन्द घोष ने लिखा है:

वंगाल के चित्रकारों की कला बंकिम चन्द्र चटर्जी के गद्य और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पद्य से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।...बंगाल के कलाकारों की शक्ति (कला) का स्रोत यह है कि वे किसी विषय, घटना और व्यक्ति के रूप पर ध्यान नहीं देते वरन् उसकी आत्मा और भाव का चित्रण करते हैं। बंगाल की चित्रकला एक नवीन सृजन, आविष्कार कला के प्रांगण में है।

बंगला चित्रशैली के स्तंभ श्री नन्दलाल बसु इस कला की मीमांसा प्रस्तुत करते हुए कहते हैं:

कलाकारों को भारतवर्ष की संस्कृति, धर्म और इतिहास से भली भांति अवगत होना चाहिए। साथ ही उनको अन्य देशों की प्रवृत्तियों का खास कर चीन और जापान और यूरोप का भी अवलोकन करना चाहिए। कलाकारों को भारतवर्ष में भ्रमण करना चाहिए। यहां के पुराने मूर्ति स्तम्भ, मंदिर और गुफाएं देखनी चाहिए। ...हमारी कला यूरोप की कला से मेल नहीं खा सकती है। हमारी कला का भूत और वर्तमान से सम्बन्ध रहना चाहिए। कलाकार का सम्बन्ध परम्परा और समाज से रहना चाहिए और कलाकार को

* पृष्ठ *80*

साधारण जनता से सम्पर्क रखना चाहिए। खेद का विषय है कि आज के कलाकारों में इसका अभाव है. . . प्रत्येक कलाकृति का कोई ध्येय या उद्देश्य होना चाहिए और उसमें कोई ऐसी चीज होनी चाहिए जो दर्शक को चित्र का विषय, भाव, उद्देश्य और तत्व दिखा सके या समझा सके।

बंगला चित्रशैली पर डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी का विवेचन दृष्टव्य है। वह लिखते हैं:

"अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में उनके प्रतिभावान शिष्य नन्दलाल बसु ने साबित कर दिया कि भारत के कलाकारों की सृजनात्मक भावना अभी जीवित है। और यह भी कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सामयिक वातावरण की और अपने हकों की मांग के अलावा गंभीर चिंतन और आकांक्षाएं भरी हुई हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन की आधारशिला भारत की जनता की स्वतन्त्रता कामना है। . . . राष्ट्रीय कलाकारों की प्रेरणा कलाकारों को चित्रांकन करने के लिए भूतकाल और भविष्य से मिल रही है न कि वर्तमान से। क्योंकि कोई भी व्यक्ति जो देश की संस्कृति तथा उसके साहित्य, कला और संगीत की अवहेलना करे सही अर्थों में राष्ट्रवादी नहीं हो सकता। यह अंग्रेजी शिक्षा का फल है। अधिकांश भारतीय जिनमें कुछ तथाकथित राष्ट्रवादी भी सम्मिलित हैं। भारतीय चित्रकला को बेकार समझते हैं।

"अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके मेधावी शिष्यों ने भारतीय परम्परागत चित्रशैली का जो पुनरुद्धार एवं नवजागरण किया, उसका डाक्टर कुमारस्वामी पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने इंग्लैंड और भारत की कई कला सम्बन्धी पत्रिकाओं में बंगला चित्रशैली की प्रशंसा की और उसके विषय में कई लेख लिखे। उन्होंने लिखा है: "कलकत्ता के आधुनिक चित्रकारों का चित्रालेखन भारत में राष्ट्रीयता के उदय का प्रतीक है, जबकि आधुनिक शिक्षित भारतवासी भारत को दूसरा विलायत बनाना चाहते थे। बंगाल के आधुनिक कलाकार भारतीय आदर्श और संस्कृति को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और मिस्टर हैवल ने नवीन कलाकारों को प्रोत्साहन दिया और भारतीय कला आदर्श को आगे बढ़ाया।"

आनन्द कुमारस्वामी ने यह भी लिखा कि कलकत्ता के कुछ राष्ट्रीय पत्र और विद्यार्थियों ने इस नवीन चित्रशैली का विरोध किया है। क्योंकि वे समझते थे कि कला का स्रोत यूरोप में है।

आनन्द कुमारस्वामी के भारतीय चित्रकला को समर्थन और नवीन कलाकारों को प्रोत्साहन देने का यह परिणाम हुआ कि इंग्लैंड में भारतीय सचिव लार्ड बरकन हैड ने सन् 1910 में 'इंडिया सोसायटी, लंदन' में अपने भाषण में कहा :

"शिक्षित भारतीय (अंग्रेजी पढ़े-लिखे) अपने देश की कला को नहीं समझते हैं। भारतीय कला संसार में सर्वाधिक समृद्ध है। भारतीय कला के समान सौन्दर्य, उदात्त भाव और विपुलता प्राचीनकाल से अब तक और किसी देश की कला में नहीं पाई जाती।"

इसी तरह कलाकार रादेनस्टीन ने अपने संस्मरण ('मेमोअर्स'—1902—1910) में लिखा है :

मैंने शिक्षित भारतवासियों में अपने देश की कला के विषय में आश्चर्यजनक अनभिज्ञता पाई है। रादेनस्टीन भी बंगला चित्रशैली से जो भारतीय ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों के चित्रण से भरपूर है, बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने देखा कि बंगला चित्रकला भारतीय परम्परागत कला और भारतीय कला आदर्शों का अनुसरण कर रही है और संसार को दिखा रही है कि भारत अनादिकाल से आज तक कला की क़ीर्ति पताका को फहराए हुए है। यहां पर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के दो प्रमुख शिष्यों का विशेष रूप से जिक्र करना जरूरी है।

नन्दलाल बसु और असित हलधर

नन्दलाल बसु उनके शिष्यों में सबसे प्रमुख और प्रतिभासम्पन्न हुए। बसु महोदय ने अपने गुरु अवनीन्द्र बाबू का पूरी तरह अनुसरण करते हुए नई संवेदनाओं से परिपूर्ण अनेक प्रकार के चित्र बनाए और कई शैलियों में अपनी प्रतिभा को व्यक्त किया।

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर नन्दलाल बसु से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने लिखा है :

नन्दलाल बसु ने अपनी चित्रण प्रणाली स्वयं निर्धारित की। नन्दलाल अपने पथ प्रदर्शक स्वयं थे। कला उनकी रग-रग में भरी हुई थी। नन्दलाल अपनी रचनाओं और अपने जीवन दोनों में कलाकार थे। उनमें संकीर्णता नहीं थी।...मैं उन विद्यार्थियों का अहोभाग्य समझता हूं, जिनको नन्दलाल बसु के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।...नन्दलाल अपने शिष्यों को चित्रांकन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता देते थे, क्योंकि वह स्वयं एक स्वतन्त्र कलाकार थे।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने नन्दलाल बसु को शांति-निकेतन में न केवल कला का मुख्याध्यापक नियुक्त किया वरन् उन्हें कुलपति भी बनाया। नन्दलाल बसु कलकत्ता से आकर शान्तिनिकेतन में रहने लगे थे और वहीं उनका देहान्त भी हुआ।

असितकुमार हलधर अवनीन्द्र बाबू के दूसरे शिष्य थे जिनकी भारतीय चित्रकला जगत में बड़ी ख्याति हुई। उनका जन्म सन् 1890 में बंगाल के एक कलाकार परिवार में हुआ था। उनके पिता बड़े कलाप्रेमी थे और उन्होंने असित को चौदह वर्ष की अवस्था में कलकत्ता की सरकारी चित्रशाला में प्रवेश दिलाया था। जहां उनको अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रभाव में आने का अवसर मिला। कालान्तर में उन्होंने इतनी उच्चकोटि के चित्र बनाए कि डा० आनन्द कुमारस्वामी उनसे बहुत प्रभावित हुए। बाद में डा० कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक में असितकुमार हलधर के कई चित्र उद्धृत किए।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने तीसरे प्रमुख शिष्य क्षितीश मजूमदार से कहा था: "तुमने वैष्णव विषयों पर उच्चकोटि के चित्र बनाए हैं। अब तक मुगल विषयों की ओर मेरा रुझान था। नन्दलाल बसु पौराणिक कथाओं पर बड़े अच्छे चित्र बनाते हैं। लेकिन असितकुमार हलधर के लिए चित्रांकन में ऐसी कोई परिसीमा नहीं है। असित कई भारतीय विषयों और शैलियों में चित्र बनाने में दक्ष हैं। असितकुमार हलधर ने अपने गुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की शैली का अनुकरण करते हुए बंगला चित्रशैली में उच्चकोटि के चित्र बनाए हैं। परन्तु उन्होंने अजन्ता शैली में बहुत ख्याति प्राप्त की है। अजन्ता चित्रांकन शैली में इतने सुन्दर चित्र और किसी दूसरे कलाकार ने अब तक नहीं बनाए हैं।" हलधर के अजन्ता शैली के चित्रों का सबसे अच्छा संग्रह इलाहाबाद संग्रहालय में है। उनके बहुत से चित्र लखनऊ और अन्य स्थानों में भी हैं।

1911 में जब असित कुमार हलधर ने अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की चित्रशाला में अध्ययन समाप्त किया तो कवीन्द्र रवीन्द्र ने उसको शान्तिनिकेतन में चित्रकला का मुख्याध्यापक नियुक्त किया। वह शान्तिनिकेतन में सन् 1924 तक चित्रकला के अध्यापक रहे। उसी वर्ष वह जयपुर आर्ट कालेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए और दूसरे साल वह गवर्नमेंट आर्ट कालेज लखनऊ के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। उस पद पर वह सन् 1958 तक आरूढ़ रहे। इस आर्ट कालेज में वह एक आदर्श शिक्षक सिद्ध हुए। असित कुमार ने कई उच्च कोटि के चित्र तैयार किए, जो उन्होंने इलाहाबाद संग्रहालय को प्रदान किए हैं।

चित्रकला पर हलधर के विचार

असित कुमार हलधर ने दो छोटी पुस्तकें 'आर्ट एण्ड ट्रेडिशन' और 'अवर हैरिटेज इन आर्ट' लिखी हैं, जो चित्रकला के विद्यार्थियों के लिए बड़ी लाभदायक साबित हुई हैं। उन्होंने लिखा है :

भारतीय चित्रकला में प्राचीन परम्परा की सांस्कृतिक, पैतृक सम्पत्ति विद्यमान है, जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक निधि की ठोस बुनियाद है। परम्परा ही हमारी कला की आधारशिला है जिस पर वर्तमान और भविष्य की कला का मंदिर निर्मित हो रहा है।*

भारतीय चित्रकला के विद्यार्थियों को अपने देश की कला सम्पत्ति और परम्परागत वैभव का अध्ययन करना चाहिए।†

परम्परा के असली माने जानने के लिए, उसे समझने के लिए, संस्कृति के माने समझने चाहिए। संस्कृति के माने हैं, परम्परागत राष्ट्रीय आदर्शों और परम्पराओं का ज्ञान प्राप्त करना। परम्परा वह ज्ञान है जो पीढ़ियों से चला आ रहा है।‡

असित कुमार हलधर चित्रांकन में लोक कला को परम्परागत चित्रकला में उच्च स्थान देते हैं। उनका मत है कि जन साधारण की कला की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। लोक कला मानव जाति के इतिहास के साथ तथा प्रागैतिहासिक काल से चली आती है। उसमें मनुष्य के आदिम कला प्रेम की भावना निहित

* पृष्ठ *10*

† पृष्ठ *11*

‡ पृष्ठ *12*

है और उसमें मनुष्य जाति से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का प्रतिविम्ब है। लोककला आदिम काल से हमको दाय के रूप में मिली है। लोककला के दृष्टांत भारत की प्राचीन गुफाओं में विद्यमान हैं। ईसा से दस हजार वर्ष पहले तक के चित्र गुफाओं की भित्तियों पर मौजूद हैं जो इतिहास संकलन पूर्व की अर्थात 'प्री हिस्टोरिकल' विख्यात गुफाएं हैं।

बंगला चित्रशैली का महत्व

आनन्द कुमारस्वामी अवनीन्द्र नाथ ठाकुर और उनके शिष्यों की शिल्प-कला से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने यूरोप की कई चित्रकला सम्बन्धी पत्रिकाओं में बंगाल के कलाकारों के चित्रों की बड़ी प्रशंसा की थी। भारत में उन्होंने बंगला चित्रशैली की सराहना में यत्र-तत्र भाषण दिए थे और लेख लिखे थे। अपनी पुस्तक आर्ट एण्ड स्वदेशी में उन्होंने लिखा है :

कलकत्ते की आधुनिक चित्रकला राष्ट्रीय जागृति का प्रतीक है। जबकि 19वीं शताब्दी के समाज सुधारक भारतीयों का ध्येय हिन्दुस्तान को विलायत बनाना था, नवीन बंगला कलाकारों का ध्येय प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के आदर्शों का प्रदर्शन करना है। यह दो बड़े कला प्रेमियों—कलाकार डाक्टर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और कलामर्मज्ञ प्रिंसीपल हैवल के सहयोग और प्रयत्न का फल है। मिस्टर हैवल उस समय कलकत्ता के चित्रकला विद्यालय के प्रधानाचार्य थे। उन्होंने देखा कि सत्रहवीं शताब्दी के हिन्दू राजपूत और मुगल शैली के अस्तित्व से बहुत कम लोग परिचित थे। सत्रहवीं शताब्दी के चित्रों में बहुत अधिक कला सौन्दर्य विद्यमान था।*

उस समय के कुछ तथाकथित राष्ट्रवादी भारतीय शिक्षित सज्जनों ने भारतीय कला के पुनरुद्धार का विरोध किया। इसके संबंध में आनन्द कुमारस्वामी का कथन है :

"कुछ भारतीय राष्ट्रीय पत्रों और विद्यार्थियों का यह विचार है कि चित्रकला का उत्थान और प्रोत्साहन पाश्चात्य चित्रकला से ही मिल सकता है। इसलिए इस नवीन जागृति चित्रकला-प्रेरणा का उन्होंने घोर विरोध किया।"†

---

* *आर्ट एंड स्वदेशी*, पृष्ठ *127-128*

† *वही*, पृष्ठ *128*

तथापि आनन्द कुमार स्वामी को इस बात का सन्तोष था कि कलकत्ते के चित्रकारों की प्रशंसा होने लगी और वहां के शिक्षित लोगों की रुचि में बड़ा परिवर्तन आरम्भ हुआ। साधारण जनता की अपरिष्कृत रुचि में भी बड़ा परिवर्तन आया जो कि 19वीं शताब्दी की यूरोपीय पद्धति की शिक्षा और प्रभाव तथा फैशन का परिणाम था। यूरोपीय प्रभाव के कारण भारतीय अपने ही देश में विदेशी बन गए थे।

आनन्द कुमारस्वामी ने बंगला शैली की देन को इतना सुन्दर तथा परम्परागत भारतीय आदर्शों और भावनाओं से ओतप्रोत पाया कि उन्होंने अपनी वृहद् पुस्तक "मिथ्स आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स" में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके शिष्यों के चालीस रंगीन चित्र उद्धृत किए थे।

3. राष्ट्रप्रेम और भारत की प्रतिष्ठापना

आनन्द कुमारस्वामी ने जितनी पुस्तकें लिखीं और व्याख्यान दिए उनकी आधारशिला उनका स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीय विचारधारा थी। उन्होंने 1907 में एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी जिसका शीर्षक था संघर्ष का सार अर्थात डीपर मीनिंग आफ दि स्ट्रगल। इसमें उन्होंने लिखा है:

वह समय था जब भारतवर्ष में आजादी की लड़ाई शुरू हुई थी। लाला लाजपतराय स्वतंत्रता का संग्राम आरम्भ करने के कारण मांडले जेल भेज दिए गए थे। जिस भारत भूमि पर तब तक थोड़े से गरम दलीय नेता थे। लाला लाजपतराय के निर्वासन के कारण अनेक नरमदलीय नेता भी उग्र विचारों के हो चले। कलकत्ता हाईकोर्ट के फैसलों को पढ़ने से मालूम होता है कि अंग्रेजों का न्याय का शिकंजा हिन्दू और मुसलमानों के लिए था अंग्रेजों के लिए नहीं। निरन्तर यह स्पष्ट होता जा रहा था कि इंग्लैंड निष्कपट नहीं है। वह कहता कुछ है करता कुछ है। जो मुश्किलें अंग्रेज स्वराज देने में बताते हैं उसका कुछ आधार हो सकता है, किन्तु उनको यह भी देखना चाहिए कि जो एकता भारतीयों (हिन्दू-मुसलमानों) के बीच बढ़ती जाती है उससे साफ जाहिर होता है कि हम अपने देश का शासन स्वयं कर सकते हैं।

भारतवर्ष का स्वराज सदा के लिए टाला नहीं जा सकता है। स्वराज अर्थात अपने देश की बागडोर अपने हाथ में लेना नवीन भारतवर्ष का उद्देश्य है। . . . . . हमको याद रखना चाहिए कि प्रत्येक जाति और हर एक व्यक्ति अपने भविष्य का निर्माण स्वयं करता है। हमको यह भी महसूस करना चाहिए कि कोई भी जाति दूसरी जाति या राष्ट्र पर अपना अधिकार सिद्ध नहीं कर सकती, जैसे कि कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति को नहीं अपना सकता।

सारे संसार में संघर्ष साम्राज्यवाद और राष्ट्रवाद के बीच का संघर्ष है। संसार को इन दो आदर्शों में से एक को चुनना है। इंग्लैंड को इस विषय में निर्णय करना होगा। इंग्लैंड के फैसले पर सारी सभ्यता के भविष्य का दारोमदार है

और उस पर संसार की संस्कृति निर्भर होगी। साम्राज्यवाद अन्य अनेक राष्ट्रों को अपने अधीन करता है। अधीनता केवल राजनैतिक नहीं होती। वरन् आर्थिक और मानसिक भी होती है। राष्ट्रवाद (नेशनलिज्म) और अन्तर्राष्ट्रीयता (इंटरनेशनलिज्म) एक ही चीज है। अन्तर्राष्ट्रीयता के माने हैं अन्य सब राष्ट्र और जातियों को अपना और एक ही परिवार का अंग स्वरूप मानना। इंग्लैंड केवल अपने फायदे की बात सोच सकता है, अपनी उन्नति के बारे में हम स्वयं अधिक सोच सकते हैं। ध्येय राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता दोनों का एक ही है। हम भारतवासी चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र राजनैतिक, आर्थिक और मानसिक दृष्टि से स्वतंत्र हो। अर्थात हम चाहते हैं कि भारत भारतवासियों का और उनके लिए हो। यही हमारा विश्वास है। इसके माने यह नहीं हैं कि हम अपने भारतवर्ष को केवल अपने लिए ही चाहते हैं। हम आजाद होना इसलिए चाहते हैं कि हर जाति को इस दुनिया में आगे बढ़ना है, उन्नति करना है, और जिन जातियों को अपनी उन्नति करने का अवसर नहीं है उनका व्यक्तित्व और आचरण संसार की समृद्धि और उन्नति में सहायक नहीं हो सकता जो कि प्रत्येक राष्ट्र का पहला दायित्व है।

इस छोटी-सी पुस्तिका में आनन्द कुमारस्वामी ने न केवल अपनी निजी आकांक्षाओं और स्वतंत्रता प्रेम तथा राष्ट्रीयता का प्रदर्शन किया है वरन् उस समय के सब भारतवासियों के स्वदेश प्रेम और आजादी की आकांक्षा दर्शाई है जबकि स्वतन्त्रता और स्वराज की चर्चा करना अराजकता व राजद्रोह माना जाता था। सरकार की नजरों में इसे राज्य के विरुद्ध विद्रोह समझा जाता था। इन्हीं विचारों के कारण लाल, बाल, पाल अर्थात लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक तथा विपिन चन्द्र पाल को कारावास भोगना पड़ा था।

1912 में भारतवर्ष से विलायत जाने से पहले आनन्द कुमारस्वामी ठाकुर बन्धुओं से मिलने, उनके शिष्यों का कार्य देखने और बंगला शैली के चित्रों का निरीक्षण करने पुनः कलकत्ता गए। वहीं से वह इंग्लैंड चले गए।

विलायत में कार्य

1912 से 1917 तक विलायत में वह भारतीय चित्रकला और संस्कृति पर पुस्तकें तैयार करने में व्यस्त रहे। उन दिनों वह अपने मातृसदन केंम्डनटाउन

और हाईगेट, लंदन में रहे। वहीं से उन्होंने राजपूत पेन्टिंग के दो खंड तथा बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म पर पुस्तकें लिखीं और उन्हें छपवाने का प्रबन्ध किया।

1913 के सितम्बर मास में, मैं आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्ययन करने और डिग्री प्राप्त करने गया। बैरिस्टरी की पढ़ाई करने के लिए मैं लंदन आया करता था। सन् 1913 से 1917 तक जब आनन्द कुमारस्वामी इंग्लैंड में रहे, मैं राजपूत पेन्टिग के प्रकाशन में उनकी सेवा-सहायता करता रहा और कलागुरु से भारतीय चित्रकला आदि सांस्कृतिक विषयों पर दीक्षा प्राप्त करता रहा। छुट्टी के दिनों में, मैं उनके पास चला जाया करता था। चित्रों के सम्बन्ध में हिन्दी कविता और चित्रों की व्याख्या उनके लिए कर दिया करता था।

अपनी उक्त पुस्तकों के प्रकाशन और उनका प्रूफ देखने के साथ-साथ वह विलायत के विश्वविद्यालयों में भारतीय कला पर व्याख्यान देते थे और भारतीय चित्रों का प्रदर्शन स्लाइडों द्वारा करते थे।

हम भारतीय विद्यार्थियों ने उन्हें एक बार आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में "इंडियन मजलिस" संस्था में आमंत्रित किया था और उनके सम्मान में एक बड़ा भोज देकर उनके प्रति आभार प्रकट किया था। उस भोज में उन्होंने भारतीय कला और संस्कृति पर बड़ा महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था, जिसकी विलायत के अखबारों में विशेष रूप से चर्चा हुई थी।

उन्हीं दिनों सन् 1914 में जब दक्षिण अफ्रीका से महात्मा गांधी लन्दन आए थे, तो 'होटल सेसिल' में एक बड़ा भोज गांधीजी के गुणग्राहकों की ओर से दिया गया था। उस अवसर पर दक्षिण अफ्रीका में उनकी गतिविधियों का तथा भारतवासियों की जो सेवा उन्होंने वहां की थी, उसका विशेष रूप से उल्लेख किया गया था। कुमारस्वामी भी मुख्य अतिथियों में से एक थे। उस भोज में श्री जिन्ना, श्रीमती सरोजिनी नायडू, भारतवर्ष के कतिपय हिमायती अंग्रेज तथा लन्दन निवासी भारतीय उपस्थित थे। भाषणकर्ताओं में आनन्द कुमारस्वामी भी थे।

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी लन्दन में मैदाभेल के एक फ्लैट में ठहरे हुए थे। मैं और कतिपय भारतीय विद्यार्थी उनके दर्शन के लिए उनके निवास स्थान पर गए।

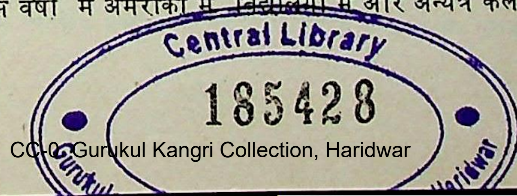
महात्मा गांधी उसी वेष में, अर्थात छोटी धोती पहने हुए नंगे सिर, एक कम्बल ओढ़े हुए जमीन पर बैठे हुए थे। हम लोग उनके चारों ओर बैठ गए। तब प्रथम महायुद्ध हो रहा था। भारत के कई सिपाही जो उस युद्ध में भाग ले रहे थे, जख्मी हालत में फ्रांस से विलायत (इंग्लैंड) के अस्पतालों में लाए गए थे। महात्मा गांधी ने हम लोगों से कहा कि एम्बुलेंस कोर में शामिल होकर अस्पतालों में भारतीय सिपाहियों की सेवा करो। मैंने उत्तर दिया कि हम इस युद्ध में भाग लेने या किसी तरह की सेवा करने के लिए तब तक तैयार नहीं हैं, जब तक कि अंग्रेज सरकार हम हिन्दुस्तानियों को किंग्स कमीशन (अफसरी पद) सेना में प्रदान न करे। अर्थात जब तक अंग्रेज हमको बराबरी के पद और अफसरी (किंग्स कमीशन) नहीं देते तब तक हम इस युद्ध में किसी भी विभाग में सम्मिलित होने के लिए तैयार नहीं हैं। मैं और मेरी तरह के उग्र विचारधारा वाले विद्यार्थियों ने महात्मा गांधी के उस परामर्श को स्वीकार नहीं किया। किन्तु कुछ भारतीय विद्यार्थी एम्बुलेंस कोर में शामिल हुए और उन्होंने अस्पतालों में जख्मी सिपाहियों की सेवा की। कुछ एम्बुलेंस कोर में भर्ती होकर फ्रांस भी गए। हां, केवल दो विद्यार्थियों को, जो बचपन से विलायत के स्कूलों में पढ़ रहे थे, किंग्स कमीशन विलायत में पहले पहल मिला। उनमें से भोलानाथ कर्नल पद तक पहुंचे। वह बरेली में जाट रेजीमेंट में प्रथम हिन्दुस्तानी कर्नल नियत हुए थे। मैं उनसे उनके बंगले "जाट हाउस" बरेली में कई बार मिला था। खेद है कि उनकी अकाल मृत्यु हो गई दूसरे थे ताजपुर, बिजनौर के कुंवर विक्टर, जो युद्ध समाप्ति पर गढ़वाल रेजीमेंट में कप्तान के ओहदे पर आए। किन्तु उन्होंने पद से इस्तीफा दे दिया। वह लैंसडाउन में हमारे घनिष्ठ मित्र थे। मैं तब लैंसडाउन में बैरिस्टरी करता था।

बरेली

बिजनौर

बोस्टन म्यूजियम अमरीका में

आनन्द कुमारस्वामी के पास सन् 1917 में लन्दन में निमन्त्रण आया कि वह अमरीका के जगत विख्यात बोस्टन म्यूजियम (संग्रहालय) में एशियाई कला संग्रह विभाग के संरक्षक (क्यूरेटर) का पद ग्रहण करें। उन्होंने यह पद स्वीकार किया और सन् 1917 से मृत्यु पर्यन्त सन् 1947 तक अर्थात् तीस वर्ष वह बोस्टन म्यूजियम में पूर्वी देशों की कलाओं के विभागों के अधिष्ठाता रहे। उन्होंने इन तीस वर्षों में अमरीका में विद्यालयों में और अन्यत्र कला सम्बन्धी



विषयों पर व्याख्यान दिए । इस अवधि में आनन्द कुमारस्वामी ने कई पुस्तकें लिखीं और अनुसन्धान कार्य किया । भारतीय दर्शन शास्त्र और इतिहास सम्बन्धी जो पुस्तकें उन्होंने लिखीं उनके विषय में अन्यत्र लिखा गया है । यहां पर यह बताना अप्रासंगिक न होगा कि डा. आनन्द कुमारस्वामी का जो मूर्ति और चित्र संग्रह था वह अब बोस्टन म्यूजियम की संग्रहीत निधि है ।

सन् 1969 में उनकी तीसरी पत्नी, मैक्सिकन पत्नी, दिल्ली आई थी । मैं उनसे अपने मित्र भवेश सान्याल के घर पर मिला था । तब वह आनन्द कुमारस्वामी के सब लेखों और पुस्तकों के नये संस्करण एक ग्रंथमाला के रूप में प्रकाशन करने का प्रबन्ध कर रहीं थीं । उनका एक पुत्र रामकुमार स्वामी अमरीका में डाक्टर है । राम प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए हरिद्वार की गुरुकुल कांगड़ी में रहा था ।

कला की खोज में भ्रमण

1920 में वह बोस्टन से दुनिया के—खास कर पूर्वी देशों की कला का व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करने के लिए निकले और जापान, इंडोनेशिया, कम्बोडिया इत्यादि पूर्वी देशों में गए । वहां की चित्रकला और मूर्ति कला के निरीक्षण से उन्हें अनुभव हुआ कि उन देशों की कलाओं के विकास में भारतीय कला आदर्शों का कितना अधिक प्रभाव रहा है और कितनी बड़ी संख्या में तथा कितने बड़े पैमाने पर भारतीय इतिहास और संस्कृति और कला का प्रदर्शन, उन देशों की कला, धर्म, मंदिरों और संग्रहालयों में मौजूद है । इन पूर्वी देशों के भ्रमण से लौटने के बाद आनन्द कुमारस्वामी ने एक पुस्तक "भारत और इन्डोनेशिया की कला का इतिहास" (हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इन्डोनेशियन आर्ट) लिखी । यह पुस्तक 1927 में लंदन से प्रकाशित की गई । इंडिया और इन्डोनेशिया की कला के इतिहास में यह पुस्तक बड़ी प्रामाणिक और महत्वपूर्ण मानी जाती है ।

बोस्टन म्यूजियम में भारतीय चित्र संग्रह

बोस्टन म्यूजियम में कार्य आरम्भ करने के समय आनन्द कुमारस्वामी ने संग्रहालय में मौजूद भारतीय चित्रों की खोज और निरीक्षण किया । उनमें से सबसे अच्छे और उच्च कोटि के चित्रों के सचित्र सूचीपत्र तैयार किए । ये

भारतीय चित्रों के सूचीपत्र जिनमें रंगीन चित्र दिए गए हैं, अब उपलब्ध नहीं हैं और अब केवल बड़े संग्रहालयों में ही देखने को मिलते हैं। भारतीय चित्रों के रंगीन प्रतिबिम्ब जो इनमें उद्धृत किए गए हैं, बोस्टन म्यूजियम की दुष्प्राप्य निधि हैं।

कला शिक्षण—बोस्टन संग्रहालय में कार्य के दौरान आनन्द कुमारस्वामी नवयुवकों को कला समझने, उसका प्रचार करने और कला समीक्षण की विधि भी सिखाते थे। इस प्रकार कलागुरु शिक्षक का कार्य भी अमरीका में करते रहे।

बोस्टन कार्यकाल में पुस्तक प्रकाशन

विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त करने के लिए कई महत्वपूर्ण पुस्तकें उन्होंने बोस्टन में रहते हुए प्रकाशित कराईं।

(1) एक छोटी-सी पुस्तिका—बगवियर आफ लिटरेसी अर्थात शिक्षा का हव्वा उन्होंने बोस्टन के कार्यकाल में प्रकाशित की जिसमें उन्होंने साक्षरता और आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा का जो दुष्परिणाम हुआ या जो हानि पाश्चात्य शिक्षा से भारतवर्ष में हुई उसकी जोरदार आलोचना की :

पाश्चात्य शिक्षा ने हमारे (भारतीय) शिक्षित समाज में भारतीय कला और संस्कृति के प्रति अवहेलना और उदासीनता उत्पन्न कर दी है। वे भारतीय साहित्य और सभ्यता को समझ नहीं पाते। परम्परागत भारतीय कला, चित्रों और मूर्तियों की ओर से मुंह मोड़ते हैं। भारतीय कला के महत्व और आदर्श को समझ नहीं पाते। उनको भारतीय कला, संस्कृति और आदर्शों के प्रति प्रेम नहीं। भारतीय शिक्षित लोग अपने धर्म, अपनी परम्परा, राष्ट्रीय आदर्शों की अवहेलना करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं। माता-पिता और स्त्री का तिरस्कार करते हैं। अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय कला और शिल्पकला तथा लोककला और गृह जीवन को नष्ट कर दिया है।

आनन्द कुमारस्वामी की अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें इस प्रकार हैं :

(1) मिरर आफ जेस्चर (भाव भंगिमाओं की भाषा 1935)
(2) एलिमेंट्स आफ बुद्धिस्ट इकानोग्राफी (1935)

(3) फीगर्स आफ स्पीच ऑर फीगर्स आफ थौट (1946)
(4) दी लिविंग थौट्स आफ गौतम दी बुद्धा (1948)
(5) गौतम बुद्ध की जीवनी
(6) गौस्पल आफ बुद्धिज़्म
(7) सती: विंडीकेशन आफ हिन्दू वूमेन
(8) मिथ्स आफ दी हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स*
(9) बंगाल स्कूल आफ पेन्टिंग
(10) डा. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके शिष्यों की परम्परा
(11) भारतीय शासन पद्धति में अथोरिटी और टेम्परल पावर (1942)
(12) रिफ्लेक्शन आफ इण्डियन एण्ड प्लेटोनिक ट्रैसमाइग्रेंट (1944)
(13) रिलिजियस बेसिस आफ इण्डियन सोसायटी (1946)
(14) कृष्ण एण्ड ओरियन्टल फिलासफी आफ आर्ट
(15) भारतीय कला में परम्परा

उक्त पुस्तकों की समालोचना करने और उनका भावार्थ देने में इस पुस्तक का विस्तार वहुत बढ़ जाता इसलिए उनका केवल संकेत मात्र किया गया है। ये पुस्तकें बड़े महत्व की और ज्ञानवर्धक हैं। जिज्ञासु सज्जन उनका अध्ययन स्वयं कर सकते हैं।

*** मिथ्स आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स**

मिथ्स आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स, पौराणिक कथा और बौद्धों की गाथाओं का संकलन भी आनन्द कुमारस्वामी ने किया है। इस पुस्तक को लिखने का विचार भगिनी निवेदिता का था। जब वह कलकत्ते में थीं तब उन्होंने उसे लिखना आरम्भ किया था लेकिन उनकी मृत्यु सन् 1911 में कलकत्ते में हो जाने पर आनन्द कुमारस्वामी ने इस पुस्तक को 1913 में लन्दन में छपवाया। भगिनी निवेदिता केवल 150 पृष्ठ लिख पाई थीं। पुस्तक के शेष 250 पृष्ठ आनन्द कुमारस्वामी ने लिखे। इस ग्रन्थ में बंगला चित्र शैली के संस्थापक अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और उनके प्रमुख शिष्यों के 33 रंगीन चित्र पौराणिक कथाओं और गाथाओं के सम्वन्ध में दिए गए हैं।

4. कला की विलक्षण ध्यानयोग पद्धति

आनन्द कुमारस्वामी की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक है ट्रांसफार्मेशन आफ नेचर इन इंडियन आर्ट अर्थात कला में प्रकृति चित्रण। भारतीय कला परम्परा की यह गीता है। इसमें आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय शिल्पकला के सिद्धान्तों का सार संकलन किया है। यह पुस्तक भारतीय कला के लिए कामधेनु है। इसमें भारतीय कला की परम्परा, उसके सिद्धान्त, उद्देश्य और नियम बड़े परिश्रम और लगन के साथ संकलित किए गए हैं।

कला में प्रकृति चित्रण

वास्तव में इस पुस्तक में आनन्द कुमारस्वामी के उन भाषणों का संग्रह है जो उन्होंने समय-समय पर अमरीका के सबसे बड़े हार्वर्ड विश्वविद्यालय में दिए थे। हार्वर्ड विश्वविद्यालय ने उनके भाषणों को सन् 1935 में पुस्तकाकार छपवाया था। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक में आनन्द कुमारस्वामी के कला संबंधी विचार विस्तारपूर्वक दिए गए हैं। प्रकांड विद्वान और जर्मन भाषा के जन्म-दाता मिस्टर एकार्ट के चित्रकला पर विचार दिए गए हैं। उनके विचार भारतीय कला सिद्धान्तों से बहुत मिलते हैं। तीसरे अध्याय में भारत की चित्रकला का विवेचन किया गया है। और चौथे अध्याय में शुक्रनीति सार के कला संबंधी सिद्धान्त दिए गए हैं। आखिरी और पांचवें अध्याय में भारतवर्ष में मूर्तिकला की उत्पत्ति और कला के स्रोत का इतिहास दिया गया है।

महापंडित कला दार्शनिक एकार्ट का जन्म जर्मनी में हुआ था। उसके विचार में कला ईश्वरीय देन है। मनुष्य का सारा जीवन सौन्दर्य उपासना की ओर उन्मुख है। मनुष्य के विचार और कार्य में एक महान चित्रकार का प्रदर्शन होता है। आदर्श कला मनुष्य के लिए असीम अपरिवर्तनीय आनन्द है। कला धर्म है और धर्म ही कला है। इन दोनों में कोई भेद नहीं। उसके कथनानुसार कलाकार कोई विशेष व्यक्ति नहीं वरन् हरेक आदमी एक खास किस्म का कलाकार है। कला शैली, कला आदर्श, कला का रूप, मूर्ति और सिद्धान्त असली चीजें हैं अर्थात कला की आधारशिला हैं।

एकार्ट खुद अपने से पूछता है, "मूर्ति क्या वस्तु है" ? और वह आप ही इसका उत्तर देता है : "प्रत्येक मूर्ति व चित्र वह वस्तु है जिसका ज्ञान कलाकार को है। उसे वह तदनुसार बनाता है। जैसे पुत्र पिता का प्रतीक (चित्र) है वैसे ही चित्र कलाकार के ज्ञान तथा बुद्धि का प्रतीक है। वह उसकी मूर्ति है। उसका रूप है। मूर्ति कलाकार की भावना और प्रेरणा का प्रतिबिम्ब है जिसका वह प्रदर्शन करता है। मूर्ति का कलाकार से अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं है। कलाकार अपनी भावना और प्रेरणा से उत्तेजित होकर लकड़ी या पत्थर पर मूर्ति उत्कीर्ण करता है या कैनवास अथवा दीवार पर रंगीन चित्र बनाता है। कला तथा मूर्ति या चित्र एक विचार अथवा विषय का प्रतीक है। उस मूर्ति में कलाकार उस विचार को प्रकट करता है। जैसी भावना और प्रेरणा उसकी उस विषय में होती है, मूर्ति या चित्र कैनवास अथवा दीवार पर उसी के अनुरूप उभरता है। दूसरे अर्थों में चित्र अथवा मूर्ति कलाकार के मस्तिष्क की उपज है यद्यपि वह मूर्ति या चित्र जो वह बनाता है उतना परिपूर्ण नहीं होता जितना कि कलाकार की परिकल्पना। वैसे कलाकार अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार उस चित्र अथवा मूर्ति को अभिव्यक्ति देता है।"

एकार्ट का कहना है कि जब मैं एक गुलाब के फूल का चित्र बनाना चाहता हूं तो मेरी आत्मा में गुलाब के फूल का चित्र होना चाहिए। मैं वास्तविक गुलाब के फूल की नकल नहीं करता। वह यह भी कहता है कि मैं अपने दिमाग में किसी मकान का चित्र रखता हूं। गो कि मैं उस मकान को वास्तव में मन में बनाता नहीं हूं। उसके कहने का मतलब यह है कि वह अपने मन में एक अति उत्तम मूर्ति या चित्र बना लेता है। जो कि वास्तव में उसके सामने न हो। वह कहता है सौन्दर्य शास्त्र अर्थात् सौन्दर्य की रचना के तीन अंग हैं। पहला अंग है चित्र के विचार के रूप की उत्पत्ति, दूसरा है मन के चक्षु के सामने उसका प्रतिबिम्बित होना और तीसरा है उसके आकार ग्रहण की क्रिया। प्रथम प्रक्रिया द्वारा उस विषय की ओर ध्यान जाता है। कलाकार को चित्रांकन करने की प्रेरणा नहीं होती है वरन् वह किसी विशेष विषय का चिन्तन करना चाहता है। चाहे वह वस्तु अथवा विषय एक फूल हो या कोई देवता हो अथवा कोई अन्य वस्तु अथवा मूर्ति। '....एक कलागुरु ने अपने शिष्य से कहा कि तुम देवताओं के चित्र बनाओ। इसके लिए तुम जाओ और ध्यान में बैठो और जब तुम्हारे चित्त में उत्तेजना आए तब चित्रण करने बैठना।' आनन्द कुमारस्वामी ने एकार्ट

के इस विचार के विषय में कहा है कि भारतीय मूर्तिकार और चित्रकार ध्यान-योग की इसी चित्रांकन विधि का प्रयोग करते थे और करते हैं।

ध्यान-योग की इस विधि का प्रयोग एक चीनी चित्रकार ने भी किया है। छठी शताब्दी के एक चीनी सम्राट ने अपने साम्राज्य के सब चित्रकारों को बुलाया और उनसे कहा, मेरी छवि बनाओ। बहुत सारे कलाकार आए और बैठकर उसको देखकर, सम्राट का चित्र बनाने लगे। एक और कलाकार भी आया। उसने सम्राट को अच्छी तरह से उसके आगे-पीछे जाकर देखा और चला गया। उसकी इस क्रिया को देखकर सम्राट को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि यह कलाकार क्यों इस तरह उसे देखकर चला गया। सम्राट ने एक जासूस उसके पीछे भेजा, उसका आचरण देखने के लिए कि वह क्या कर रहा है। उसका दूत जब लौट कर आया तो उसने सम्राट से कहा, "हुजूर ! वह कुछ नहीं कर रहा है। वह तो एक कमरे में आसन जमा कर जमीन पर बैठा हुआ है और आंख बन्द किए हुए है।" कुछ दिनों के बाद वह कलाकार आया और उसने सम्राट को उसकी छवि समर्पित की। सम्राट ने देखा कि जितने चित्र और कलाकारों के बनाए हुए थे उनमें सबसे उत्तम इसी चित्रकार का बनाया चित्र था। इसीलिए आनन्द कुमारस्वामी और कलादृष्टा एकार्ट ने कहा है कि कलाकार के मानस पटल पर उदित होने वाला बिम्ब ही उसकी कलाभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। कलाकार के चर्म चक्षु विषय वस्तु को उसके मानसिक चक्षु तक पहुंचाने के दर्पण मात्र हैं।

अन्त में मैं यहां पर आनन्द कुमारस्वामी के शब्दों में एकार्ट की चित्रकला की परिभाषा का सारांश देता हूं।

कला (चित्र) किसी वस्तु या विषय का गुण निर्देशन, व्याख्या, तात्पर्य और सारांश है। वह चित्र यथावत, लाक्षणिक अथवा दृष्टांत या रूपक और रहस्यात्मक है। . . .आनन्द कुमारस्वामी का कहना है कि कला की कई विधियां और शैलियां हैं किन्तु कला सार्वभौम वाणी है। शैलियां तो कलाकार की अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र हैं। इन विधियों-माध्यमों का अध्ययन धैर्य से विधिपूर्वक करना होता है। एकार्ट ने कहा है :

"सब शैलियां रूढ़ि और परम्परागत हैं. . .प्रत्येक चित्रकार और मूर्तिकार अपनी कलाकृति में अपना अस्तित्व छोड़ जाता है. . .और प्रत्येक चित्रकार उसी भाव दृश्य और चित्र का प्रदर्शन अपनी कला में करता है जिसका वह अपने ध्यान (मन) में चित्र बनाता है।"

5. एशिया की कला मान्यताएं

एशिया में चीनी और भारतीय कला सिद्धान्तों और नियमों में बड़ी समीपता है जो कि निम्नलिखित अंशों से स्पष्ट हो जाएगी।

चीन की दृष्टि में कला के तत्व

चीनी कला ग्रन्थ 'चि-त्जू-युआन' में लिखा है कि जब चित्रकार दैवी पद पर पहुंच चुकता है तो कला का अन्त हो जाता है। इस धारणा की व्याख्या परोक्ष रूप से चीनी चित्रकार उ-त्यो-ज्यू (Wu–Tao–Tzu) ने की है। उसने एक महल की दीवार पर बहुत अच्छा प्राकृतिक दृश्य चित्रित किया जिसमें उसने वन, मेघ, पक्षी, मनुष्य और प्रकृति आदि सब चीजों के चित्र बनाए। अर्थात् यह भित्ति चित्र सार रूप में सारे संसार का विम्ब था। कलाकार का आश्रयदाता चीनी सम्राट इस चित्र का अवलोकन करते हुए मन ही मन उसकी प्रशंसा कर रहा था। कलाकार (Wu-Tao-Tzu) ने सम्राट का ध्यान उस दरवाजे की ओर आकर्षित किया जो उसके बनाए हुए पहाड़ के किनारे खींचा गया था और उसने सम्राट से कहा कि इस दृश्य के अन्दर होकर आइए। कलाकार पहले दरवाजे के अन्दर घुसा और उसके बाद वह दिखाई नहीं दिया।*

यही चीनी चित्रकार के कथन की व्याख्या है। जब कलाकार कला की पराकाष्ठा दैवीपद पर पहुंच जाती है तब उसका अन्त हो जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब कोई कलाकार अपने जीवन में सर्वांग सुन्दर चित्र या मूर्ति बना लेता है तब उसके जीवन का अन्त हो जाता है अर्थात उसके कलाकार जीवन का उद्देश्य पूरा हो जाता है। दूसरे शब्दों में कलाकार का ध्येय सर्वोत्तम दैवी चित्र तैयार करना है। आगे चलकर कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है यह कलानिर्माण का तत्व है कि कला में प्रकृति की विभिन्न स्थितियों और प्रकृति को दर्शाना है। इसी को कहते हैं कि कलाकार सृष्टि के सब प्राणियों को ईश्वर के पास लाता है. . . . कला

* *ट्रांसफार्मेशन आफ नेचर इन आर्ट (1935), पृष्ठ 22*

परम्परागत, रूढ़ि है। वह अभिसामयिक है और औपचारिक है। इसी को रूढ़िवादिता या रिवाज भी कहते हैं। कलाकार का ध्येय अथवा विचारों का प्रदर्शन रूढ़ि अथवा परम्परागत संकेतों के चिह्नों के द्वारा होता है। क्षयोमुख में कोई उत्तेजना नहीं रहती है। आजकल के नकलबाज कलाकारों की कला में कोई उत्तेजना अथवा उल्लास नहीं।

चीनी कला समीक्षक सी हो ने पांचवीं शताब्दी में कला संबंधी निम्नलिखित छः नियम निर्धारित किए थे, जिनको आनन्द कुमारस्वामी ने उद्धृत किया है :

1. ब्रुश अथवा कलम से चित्र का ढांचा तैयार करना।
2. उसमें जीवन का संचार करना।
3. जिस विषय की मूर्ति बनानी हो उसमें उसका आकार (रूप) व्यक्त करना।
4. जिस विषय का चित्र बनाना हो उसके अनुरूप रंगों का प्रयोग करना।
5. चित्र के प्रत्येक भाग को उपयुक्त स्थान में दर्शाना।
6. चित्र का परम्परागत प्रदर्शन अर्थात् चित्र में परम्परा का प्रभाव दिखाना।

वास्तव में दूसरा नियम सारे चित्र का नियन्त्रण करता है। पहला नियम बाहरी प्रदर्शन है। तीसरा और चौथा नियम रंग इत्यादि का प्रदर्शन करता है। पांचवां चित्र के प्रत्येक अंग को उपयुक्त स्थान पर दर्शाता है। और आखिरी छठा नियम प्राचीन आदर्श चित्रों का अनुकरण करते हुए परम्परा का प्रदर्शन करता है।

भारत की दृष्टि में कला तत्व

कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी का कहना है कि ये छः चीनी नियम शुक्राचार्य के भारतीय कला तत्वों से बहुत मिलते-जुलते हैं। यद्यपि हमारे पास इस बात के काफी सबूत नहीं हैं कि इन चीनी कला नियमों के आधार पर भारतीय कला सिद्धान्त प्रभावित हुए हैं।*

ट्रांसफार्मेशन आफ नेचर इन आर्ट, पृष्ठ 20

शुक्रनीति के कला नियम

1. कलाकार को जिस विषय का चित्र या मूर्ति बनानी हो उसे उसके भाव और आत्मा में प्रवेश करना होता है। उस विषय के वातावरण और स्थिति में प्रवेश करना होता है। उस विषय के अनुभव, अभिनय और भाव भंगिमा का मानसिक चित्र अपने मन में बनाना होता है। किसी भी विषय के चित्र के स्थायी भाव पर विशेष ध्यान देना होता है। अलंकार और शैली कला के विशेषण, गुण तथा लक्षण हैं। कलाकार अपनी कला (चित्र आदि) में तल्लीन होकर स्वयं उस चित्र में प्रतिबिम्बित (अवतरित) होता है।

2. शुक्रनीति के अनुसार कलाकार अपने चित्र अथवा मूर्ति में परम्परा का प्रदर्शन अथवा अनुकरण करता है।

3. कलाकार की कृति (मूर्ति या चित्र) में आनन्द, प्रेम, शृंगार रस, वीररस, उत्तेजना, व्याकुलता, अधीरता, रौद्रभाव इत्यादि प्रत्येक प्राकृतिक मानवीय भाव प्रदर्शन प्रस्तुत होता है। चित्र को देखकर दर्शक प्रसन्न हो सकता है; दुखी हो सकता है, मूर्छित हो सकता है; हँस सकता है; रो सकता है। कलाकार अपनी कृति में उस दृश्य या भाव को प्रधानता देता है जिसे वह अपने चित्र या मूर्ति द्वारा प्रदर्शित करना चाहता है।

भारतीय कला सिद्धान्तों का अनुकरण करने वाला कलाकार अपनी कलाकृति को अलंकार, शैली, रीति, उपयुक्त रंग, उपादान और साधनों द्वारा परम्परागत आदर्श चित्र व मूर्ति का निर्माण करता है।*

कला संरक्षण

महाभारत के समय में कला (चित्र आदि) मनुष्य के गुणों का प्रदर्शन मानी जाती थी। कलाकार अपनी कृति (चित्र आदि) को अपने जीवन का पुण्यफल और गुण मानता था। वह उसका पुण्य कर्म प्रशंसनीय और श्लाघ्य होता था। कलाकार और उसका गुणग्राहक (संरक्षक) एक ही भावना एवं उद्देश्य से प्रेरित होते हैं। उन दोनों की कला की मान्यताएं उनकी भक्ति, उपासना, अनुरक्ति के अनुसार होती थी। अर्थात् जितनी तल्लीनता से कलाकार चित्र अथवा मूर्ति बनाता था उतनी ही उसकी मान्यता और कद्र होती थी। प्रत्येक कलाकृति का कोई

* वही, पृष्ठ 50–54

विषय होता था। उसका गुण ग्राहक उसका आश्रयदाता होता था। कलाकार अपनी ख्याति की परवाह नहीं करता था। वह समझता था अगर उसकी कला अच्छी है तो उसके गुणग्राहक उसकी सराहना भविष्य में करेंगे ही। कलाकार और उसका रसिक आश्रयदाता कला प्रेमी, एक ही भावलोक के व्यक्ति हैं। दुर्योधन ने जब जुए के चित्र को देखा तो देखते ही वह बोला—"क्या ही सुन्दर प्रदर्शन जुए के खेल का है। जुआरियों के भावों का यथोचित प्रदर्शन किया गया है। चित्र क्या सफाई और खूबी के साथ बना हुआ है। मैं इस चित्र से बहुत प्रसन्न हूं।"° इसी तरह जब दुष्यंत ने शकुन्तला का चित्र देखा तो दुष्यंत बोल उठा, कितना अच्छा चित्र है। जिसमें शकुन्तला का सौन्दर्य लावण्य और आकर्षण प्रत्येक रेखा में प्रदर्शित है और शकुन्तला के भाव यथावत चित्रित हैं। चित्र को देखकर इच्छा होती है कि मैं इस चित्रित शकुन्तला से बात कर सकूं। विदूषक रंगों के समन्वय को मिटाने का यत्न करता है। उसके रगड़ने से चित्र और भी अधिक चमकीला होता है।*

भास ने उत्तर रामचरित में लिखा है कि जब भारत ने अपने माता-पिता की मूर्ति देखी तो वह चिल्ला उठा—"अहा, इन मूर्तियों में क्या चमत्कार, सजीवता और सौन्दर्य कलाकार नें दिखाया है। वह मन ही मन सोचता है कि वह मेरे माता-पिता के चित्र हो सकते हैं। और मन में कहता है, मुझे तो इनको देखने से बहुत आनन्द और प्रसन्नता होती है। शायद यह इस कारण है कि मैं यह समझ रहा हूं कि यह मेरे माता-पिता के चित्र हैं।" . . . उत्तर रामचरित में लिखा है, जब सीता ने चित्र को देखा तो उसके मन में अपने पूर्व जन्म की याद आई। और वह चित्र को देर तक देखती रही।†

हमारे चित्रकार प्राकृतिक दृश्य और भवन निर्माण में भी बड़े दक्ष थे। एक चित्रकार ने जो प्लोनरूबा नगर के विध्वंस का यथोचित चित्र खींचा जो इमारतें नष्ट हो गई थीं उनका उसने यथोचित अंकन किया और चित्र में दर्शक को इमारतों का अतीत, उनके भंगीकरण तथा खंडहरों की दीवारें यथावत दिखती थीं।‡

° *ट्रांसफार्मेशन आफ नेचर इन आर्ट*, पृष्ठ 101
* *वही*, पृष्ठ 103
† *वही*, पृष्ठ 104
‡ *वही*, पृष्ठ 106

वे अध्याय के अन्त में लिखते हैं कि प्रत्येक चित्रकार चित्र अपने ही ढंग से अपनी शैली में बनाता है। वह स्वयं मानो कामधेनु है, जो दर्शक के लिए वैसा ही चित्र बना देता है जैसा वह चाहता है। हमको भारतीय कला को हरेक पक्ष व दृष्टिकोण से देखकर उसकी सराहना करनी चाहिए। हमारी कला में भक्ति, निष्ठा और धार्मिक भाव, कोमलता और भावुकता तथा कला शैली की मर्मज्ञता और रसिकता इत्यादि सब विद्यमान रहते हैं।*

कला के आश्रयदाता

कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी लिखते हैं : हमारे इतिहास में ऐसा कोई समय नहीं था जब हमारे देश में चित्र और मूर्तिकला के गुणग्राहक, आश्रयदाता न रहे हों। मालूम होता है गुरुदेव का यह कथन इस बात का खण्डन करने के लिए है कि कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों की धारणा है कि कला का पेट्रोनेज (संग्रह और गुण ग्राहकता, आश्रय) मुग़ल बादशाहों के समय से शुरू हुआ। हमारे देश में प्राचीन काल में कलाकार समाज और जनता का अंग था। समाज से अलग नहीं था। वह जनता को समझता था और लोग उसे व उसकी कृतियों को समझते थे। आजकल के कलाकारों की तरह वह जन समूह से पृथक नहीं था।

आजकल के कलाकारों की कृति न केवल साधारण लोगों की समझ में नहीं आती है वरन् शिक्षित समाज भी आधुनिक अर्थात पाश्चात्य कलाकारों, नकलची कलाकारों की कृतियों को नहीं समझ पाते हैं। आनन्द कुमारस्वामी का कहना है :

आजकल का नकलची चितेरा जनसमूह से पृथक रहने वाला अजीब व्यक्ति है। वह तस्वीर या मूर्ति बनाने में अपनी इच्छा के पाश्चात्य कलाकारों की नकल करता है। वह अपने समाज व जनता की रुचि और भावना की परवाह नहीं करता है कि वे क्या चाहते हैं और क्या पसन्द करते हैं। आधुनिक कलाकार जनता की स्मृति, परम्परा, आदर्श और उनके पूर्वजों के विश्वासों की परवाह नहीं करते हैं, उनकी ओर ध्यान नहीं देते हैं। जो मन में आया बस वहीं कैनवास, पाषाण या मिट्टी में तैयार कर दिया।

सौंदर्य अनुसदृश्य

आनन्द कुमारस्वामी कहते हैं कि परस्पेक्टिव (अनुसदृश्य) का प्रयोग कलाकार किसी वस्तु के अस्तित्व को उसकी दूरी और अन्तरिक्ष संकेत करने के लिए

*वही, पृष्ठ 170-8



एच. वी. रामगोपाल की तूलिका से चित्रित डा. कुमारस्वामी





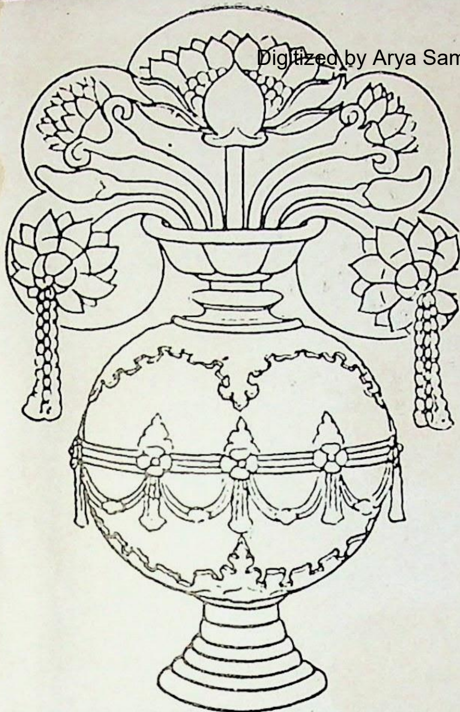
आनन्द कुमारस्वामी नटराज की मूर्ति देखते हुए। पास में खड़े हैं युवक मुकन्दीलाल [छाया-कार अवतारसिंह पंवार कृत काल्पनिक चित्र]



एक महान लेखक कार्यरत
(चित्रकार—एस. एन., आलंदकर)

आनन्द कुमारस्वामी का एक अन्य रेखाचित्र





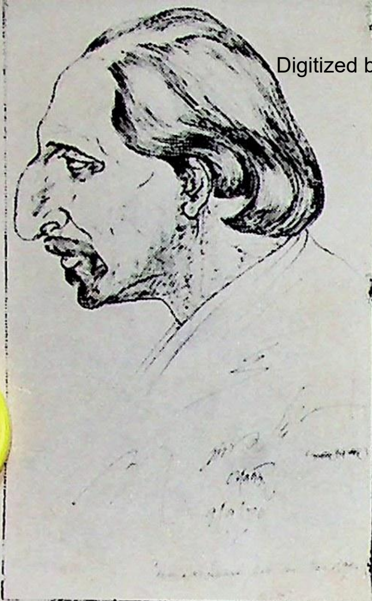
घटमय कमल

कुमारस्वामी कृत 'यक्ष' में उन्हीं की तूलिका से एक रेखाचित्र जिसमें घट में उत्फुल्ल कमल दिखाए गए हैं।

←आनन्द कुमारस्वामी अपने उद्यान में अवसान से कुछ ही पूर्व विचरण करते हुए (9 सितम्बर 1947) (चित्रकार–रौबर्ट विन्ज़र ब्रूस)



आनन्द कुमारस्वामी द्वारा बनाया गया भारहुत शैली की यक्षिणी का चित्र दाईं ओर–आनन्द कुमारस्वामी द्वारा लिया गया फोटो चित्र–प्रकृति शोभा



"आज आनन्द कुमारस्वामी नहीं रहे (9-9-47)"
(कलाकार अवतारसिंह पंवार)



सुधीर खस्तगीर कृत
आनन्द कुमारस्वामी—
ड्राई ब्रश रेखाचित्र

करते हैं। स्पेस (अंतरिक्ष) एक मान्यता है। उसकी मौजूदगी सबको मान्य है। परस्पेक्टिव (अनुसदृश्य) का प्रयोग केवल ऐतिहासिक और वर्णनात्मक समस्या रह जाती है। सौन्दर्य प्रदर्शन के लिए कोई विशेष अनुसदृश्य किसी दूसरे सदृश्य के मुकाबले में अनुकरणीय नहीं है। कलाकार उस सदृश्य का प्रयोग अपने चित्र में करता है जो उसके प्रदर्शन के लिए उपयुक्त हो और जिसे समझने में आसानी हो। अनुसदृश्य दर्शक की समझ में आ जाना चाहिए।* गो कि यह मानना पड़ेगा कि भारतीय चित्रकला में अनुसदृश्य (परस्पेक्टिव) पर इतना जोर नहीं दिया जाता है परन्तु पाश्चात्य कलाकार अनुसदृश्य को अत्यन्त आवश्यक मानते हैं।

प्राचीन और अर्वाचीन कला

आनन्द कुमारस्वामी ने एशियाटिक कला आदर्शों और नियमों का जो विवेचन किया है उसको ध्यान में रखते हुए हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि उनकी दृष्टि में भारतीय कला परम्परागत, धर्म संबंधी (धार्मिक) है और वह शिल्पाचार्यों के बनाए हुए नियमों पर निर्धारित है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार उसका सृजन होता है। इसके साथ ही आनन्द कुमारस्वामी शिल्प कला में नवीन विचारधारा और परिवर्तित परिवेश को नहीं भूले। कला में परिवर्तन के संबंध में उपसंहार में वह लिखते हैं :

हमारे यह चाहने पर भी कि प्राचीन कला का ही प्रादुर्भाव हो, नई प्रवृत्ति को रोकना या बदल सकना कठिन है। प्रत्येक समय का अपना कला आदर्श देखने में आया है। प्रत्येक समय की कला उसी समय के कला संबंधी मानदंडों के अनुरूप ही मूल्यांकित होती है। कलागुरु ने कला के तत्कालीन फैशन व विचारधारा के अस्तित्व का अपना स्थान माना है। ये उनके अंतिम विचार हैं। किन्तु यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपने कलाकारों के सामने अपने कला आदर्शों और मान्यताओं को रखें। हमारे कला सिद्धांत आदर्श और परम्परा ने भारहुत, अमरावती, अजन्ता, एलोरा, मथुरा, सारनाथ, जैन कला, राजस्थानी कला, मुगल कला, पहाड़ी चित्रकला इत्यादि कला को जन्म दिया। इन विभिन्न कला पद्धतियों के अन्तर्गत जिन कलाकृतियों ने रूप-आकार धारण किया उनको सिवा हमारे देश के कलाकारों के और कोई नहीं बना सकता है। उसको जीवित रखना हमारा कर्त्तव्य ही नहीं, परम कर्त्तव्य है।

* *वही, पृष्ठ 147*

6. पाश्चात्य और प्राच्य कला विज्ञान

आनन्द कुमारस्वामी ने अमरीका के विभिन्न विश्वविद्यालयों और संस्थाओं में प्राच्य (ओरियन्टल) और पाश्चात्य (क्रिश्चियन फिलॉसॉफी आफ आर्ट) पर, जो नौ व्याख्यान समय-समय पर दिए थे उनका संकलन "क्रिश्चियन एंड ओरियन्टल फिलॉसॉफी आफ आर्ट" नामक पुस्तक के रूप में हाल में छपा है। उसमें जो विचार उन्होंने प्रकट किए हैं वे पाश्चात्य और प्राच्य कला आदर्शों और कला विज्ञान के ध्येयों और विधियों को समझने में बहुत सहायक होंगे। आनन्द कुमारस्वामी के उन व्याख्यानों के विषय इस प्रकार हैं :

(1) कला का प्रदर्शन क्यों ?

(2) कला विज्ञान का तत्व।

(3) क्या कला अंधविश्वास मात्र है या कला वास्तविक जीवनपद्धति है ?

(4) कला से मनुष्य को क्या लाभ है ?

(5) सौन्दर्य और सत्य।

(6) मध्यकालीन कला का स्वरूप।

(7) छवि (पोर्ट्रेट) का परम्परागत ध्यान।

(8) लोककला (फोक आर्ट) क्या है ?

(9) गणित में सौन्दर्य।

आनन्द कुमारस्वामी की धारणा है कि क्रिश्चियन और हिन्दू कला के मूल सिद्धान्त और आदर्श भी एक से हैं और दोनों की आधारशिला धर्म है। उनका कहना है, "धार्मिक कला साकार मूर्ति प्रदर्शन है। क्रिश्चियन अर्थात पाश्चात्य और प्राच्य कला आदर्श एक से हैं। दोनों एक ही ध्येय (ईश्वर)* तक पहुंचने के मार्ग (धर्म) हैं। लेकिन स्वयं में साध्य न होकर साधन मात्र हैं।"

---

* *जिसे मनुष्य संसार में पूजते हैं वह ईश्वर नहीं। "ईश्वर बाहर नहीं हमारे अन्दर है और उसे अंदर ही ढूंढ़ना चाहिए।*

कला में परम्परा

पाश्चात्य (क्रिश्चियन) कला और प्राच्य (एशियाटिक) कला दोनों में परम्परा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। परम्परा का पाश्चात्य और प्राच्य दोनों कलाओं में सर्वोच्च स्थान है। आनन्द कुमारस्वामी का कथन है कि "जो चित्र और मूर्ति परम्परा के अनुसार निर्मित होते हैं, चाहे वे क्रिश्चियन कला की या प्राच्य कला की देन हों, या लोक कला की देन हों उन पर कलाकार का नाम सामान्यत: नहीं होता है। यदि किसी चित्र या मूर्ति में कलाकार का नाम मिले तो उस कलाकार के नाम के अलावा और कुछ बात मालूम नहीं होगी—जैसे वह किस जाति या किस प्रदेश का था। यही 'अनाम' गाथा साहित्यिक रचनाओं पर भी लागू होती है। अर्थात भारतीय चित्रकार, साहित्यकार, मूर्तिकार और शिल्पकारों के नाम उनकी कृतियों में नहीं लिखे होते हैं। परम्परागत चित्र या मूर्ति को किसने बनाया अथवा पद को किसने कहा, यह जानना जरूरी नहीं होता। इतना जानना काफी होता है कि जो बनाया गया या लिखा गया या कहा गया है वह सत्य है। रचना चाहे किसी की हो उसकी आधारशिला सत्य, आध्यात्मिकता है।* परम्परा न केवल कला (चित्र या मूर्ति) के रूप में होनी चाहिए वरन उस (चित्र या मूर्ति) के बनाने के तरीके में भी परम्परा होनी चाहिए। भारतीय परम्परा और कला के नियमों व भारतीय शिल्पशास्त्र के अनुसार मूर्ति और चित्र के अंग की हड्डी नहीं दिखाई देनी चाहिए और नसें भी नहीं दर्शाई जानी चाहिएं।

कला परम्परा विज्ञान में ज्ञान प्रधान है। मूर्ति और चित्र में सौन्दर्य भाव की सार्थकता प्रधान है। परम्परा विज्ञान में धार्मिक चिह्न और प्रतिक्रिया तथा विधि के लिए भी स्थान है। मनुष्य कला के लिए नहीं है वरन् कला मनुष्य के लिए है। परम्परागत कला में क्रिया (फंक्शन) और ध्येय (आशय) एक ही हैं। बिना कलात्मक सौन्दर्य के कोई वस्तु रोचक नहीं होती। प्रत्येक सुन्दर चित्र और मूर्ति आनन्ददायक होती है। परम्परा का अनुकरण करने वाले कलाकार का नाम या व्यक्तिगत इतिहास 'नामालूम' होता है। किन्तु उसकी कृति में उसका व्यक्तित्व मुखर होता है।

कला सिम्बोलिक अथवा संकेत मात्र है। चित्रण प्रमुख और इतिहास प्रदर्शन कला का गौण गुण है। कला माध्यम मात्र है। चित्रांकन और मूर्ति

* *क्रिश्चियन एण्ड ओरिएंटल फिलॉसॉफी आफ आर्ट, पृष्ठ 40*

के निर्माण का उस वक्त अन्त हो जाता है जब हम परमात्मा को मूर्ति द्वारा पा लेते हैं।*

परम्परागत कला (ट्रेडिशनल आर्ट) और शास्त्रीय कला तथा लोकाचार सामयिक रिवाज से भिन्न है। परम्परागत कला का विशेष ध्येय होता है। उसकी सृजन क्रिया, निर्माण विधि निर्धारित है जो कि सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी, प्राचीन काल से चली आती है। उसका महत्व और खूबी अब भी अचल है तथापि आधुनिक रिवाज (फैशन) ने परम्परा से मुंह मोड़ लिया है।

लोककला

लोककला का उद्गम स्थान जनता और जनसमूह हैं। साधारण लोग उसके कर्ता, उसके संरक्षक और उसको प्रवहमान रखने वाले हैं। लोककला मनुष्य के साथ-साथ परम्परा से चली आती है। वही शास्त्रीय कला की आधारशिला है। आनन्दकुमार स्वामी ने "क्रिश्चियन एंड ओरियन्टल फिलॉसॉफी आफ आर्ट" के आठवें अध्याय में विस्तारपूर्वक लोककला के विषय में लिखा है। लोककला परम्परागत है और उसके कर्ता कलाकारों के नाम मालूम नहीं होते। फौक आर्ट 'अनाम' होता है। लोककला के बनाने वाले और उसके उपासक, प्रयोगकर्ता भी जनसाधारण हैं और उसके उपभोक्ता भी वही लोग हैं न कि सुशिक्षित उच्च वर्ग के भद्र लोग। अपने इस अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए आनन्द कुमारस्वामी मुगल कला का उदाहरण देते हैं। वह लिखते हैं कि मुगल चित्र-कला व्यक्तिगत तथा उच्च श्रेणी की जीवनचर्या और उनके समाज तथा परिवार की कला है। मुगल कला भद्र समाज का जीवन चित्र है। उसमें मानव छवियों और व्यक्ति चित्रों (पोर्ट्रेट्स) की प्रधानता है जबकि लोककला में जनता के रिवाज, रहन-सहन, समाज संगठन, विश्वासों, कल्पनाओं और अन्धविश्वासों से सम्बन्धित चित्र बनाते हैं। वास्तव में परम्परागत कला लोककला है। लोक कथा लोककला पर आधारित है जिसे जनता संचित किए और संभाले रहती है, भले ही कला व उन चित्रों को साधारण लोग समझ भी न पाएं। लोक कला के कुछ विषयादृश्य, इतने पुराने हैं कि उनको प्रागैतिहासिक (प्रिहिस्टो-रिक) कहा जाता है। जो कला लोक गाथा और किस्से-कहानियों में निहित है

* *वही, पृष्ठ 52-53*

† *वही, पृष्ठ 136*

और संचित है, वह सब गोपनीय मत और चिह्न हैं। गोपनीय विश्वास प्राचीन समय से संचित हैं। लोगों की कल्पना और स्मृति एक प्रकार की नाव अथवा भंडार है जिसमें पुराना ज्ञान सुरक्षित चला आता है। लोक कला अथवा फौक आर्ट लोक मत और अंधविश्वासों तथा रीति रिवाजों की साकार मूर्ति है।*

कला का प्रयोजन और उपयोग

आनन्द कुमारस्वामी ने छोटे-छोटे वाक्यों में कला की परिभाषा दी है। उनका कहना है कि जैसे जीवन में कार्य करने के लिए, इस संसार में रहने के लिए और काम करने के लिए नियम, नीति और शास्त्र का सहारा लेना होता है, नियमों द्वारा हमारा पथ प्रदर्शन होता है; उसी तरह प्रत्येक कला के नियम और सिद्धान्त होते हैं जिनका अनुकरण किए बिना या जिनकी मदद के बिना मूर्ति या चित्र का निर्माण नहीं हो सकता है। बिना कला के शिल्प अशोभनीय है। कला प्रत्येक वस्तु के अन्दर निहित है। कलाकार उस चीज के द्वारा कला का प्रदर्शन करता है। कला में मानवीय सत्य निहित है और कला स्वयं मानवीय लक्षण है। क्रिश्चियन दृष्टि में कला को किसी नतीजे अथवा ध्येय पर पहुंचने का साधन मानते हैं अर्थात ईश्वर के समीप पहुंचने का मार्ग ईसाइयों के नज़दीक कला है।†

हिन्दू लोग भी कलाकृति (मूर्ति और चित्र) को ईश्वर तक पहुंचने का साधन समझते हैं। हां, कुछ लोग कला को मनोरंजन का साधन या अनावश्यक चीज भी समझते हैं।*

कला की परिभाषा गुरुदेव अन्यत्र भी दे चुके हैं :

"कला सौन्दर्यमय प्रदर्शन है। कला आनन्द, प्रसन्नता और सुख का स्रोत है। कला के द्वारा मनुष्य के भाव साकार (मूर्तिमान) बन जाते हैं। कला व्यक्तिगत दृष्टि से कलाकार की परम देन है। कला किसी भी जाति की, किसी खास समय की देन है।"

---

* *वही, पृष्ठ 138-140*

† *यही कारण है रोमन कैथौलिक गिर्जाघरों की दीवारों पर ईसाई धर्म (ईश्वर) सम्बन्धी चित्र ग्यारहवीं शती से नाना रंगों में उत्कीर्ण किए जाते रहे हैं।*

* *वही, पृष्ठ 91-108*

अन्य कला प्रेमी और कलामर्मज्ञ भी डाक्टर कुमारस्वामी की कला की परिभाषा से सहमत हैं ।

ब्रिटिश कला मर्मज्ञ क्लाइव बेल ने कहा है : "कला का इतिहास किसी भी जाति का इतिहास है ।"

फ्रांसीसी कला पारखी डैला क्वा ने लिखा है : "कला सौन्दर्य चिरस्थाई है । हर एक पीढ़ी कला सौन्दर्य का स्वागत करेगी । किन्तु विभिन्न देश अपने-अपने देश की कला को अपना जामा पहनाते हैं ।"

जर्मन कलाविद् गोयट्स ने लिखा है : "सब कला देश व जाति विशेष के जीवन आदर्श, ध्येय, आकांक्षा, उद्देश्य तथा अपने समय व कौम के विचारों का प्रतीक है ।"

आस्ट्रियन विवेचक स्टला क्राम्रिश ने कहा है : "भारतीय कला भारत वर्ष के इतिहास, संस्कृति, सभ्यता और विश्वासों का संकलन है ।"

कला के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा है : "किसी भी राष्ट्र की कला उसके इतिहास का साकार प्रदर्शन है । ललित कला किसी भी जाति के भूतकाल का हमें दिग्दर्शन कराती है और हमारे सामने मूर्ति और चित्र के रूप में हमारे पूर्व काल को साकार बना कर हमारे सामने उपस्थित होती है ।"

कला जीवन की प्रतिध्वनि

आनन्द कुमारस्वामी का कहना है कि कला जीवन की एक प्रक्रिया अर्थात् जीवन के रहन-सहन का तरीका है । सौन्दर्य के साथ जीवन बसर करना है । सौन्दर्यमय जीवन मनुष्य को कल्याण और आनन्द की ओर ले जाता है । कला जीवन का निचोड़ा हुआ रस है । कला प्रकृति का प्रतिरूप भी है । कला में निराकार भावना और दैवी शक्ति निहित है ।

कला का काम है मनुष्य में सौन्दर्य के प्रति प्रेम उत्पादन करे और उसे बढ़ाए । कला मनुष्य के आनन्द का स्रोत है । वास्तव में कला का अन्त भी आनन्द ही है । इसलिए कला कला के लिए है ।

कला के विचारवान विद्यार्थी के लिए यह आवश्यक है कि वह कला की परम्परा और सौन्दर्य आदर्श को भली भांति पहले समझ ले। परम्परा और कला तथा सौन्दर्य की परिभाषा से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में लोग क्या पसन्द करते थे। किन विषयों की मान्यता कला जगत में थी। कला प्राचीन काल से समाज के आदर्शों और भावनाओं में और उनके साथ परम्परा से चली आती है। नवीन कलाकार को कला को समझना और उसका अध्ययन करना चाहिए।

प्राचीन काल में कलाकार समाज का अंग था। वह वही चीजें बनाता था जिनकी समाज को जरूरत होती थी।

संग्रहालय

संग्रहालय नवीन कलाकृतियों के संग्रह के लिए नहीं है। संग्रहालय का उद्देश्य है पुरानी कलाकृतियों को नष्ट न होने देना, उनको संरक्षित रखना, उनको एकत्र करना और उनको देखने वालों को दिखाना, देखने का अवकाश देना। कुछ कलाकृतियां ऐसी हैं जो अप्राप्य होती हैं। उन्हीं को ढूंढ़ कर लाकर उनका संग्रह करना होता है। किसी मूर्ति या चित्र के संग्रह पर कुछ ऐसी भी चीजें होती हैं जिनको सुरक्षित रखना किसी कार्य विशेष के लिए जरूरी होता है। कुछ चीजें ऐसी होती हैं जिनको उन्हीं के बड़े आकार में नहीं रखा जा सकता, उनको छोटा करके म्यूजियम में संग्रहीत करना होता है।

सर्वोच्च कृति अर्थात मास्टरपीस

सर्वोच्च कृति अर्थात मास्टरपीस या आदर्श मूर्ति या चित्र का निर्माण करने के लिए किसी विलक्षण व्यक्ति को ढूंढ़ने की जरूरत नहीं होती। देखना यह होता है कि कौन मास्टरपीस बना पाता है। मास्टरपीस या सर्वोच्च कलाकृति किसी भी कलाकार की अचानक अथवा अकस्मात निर्मित मूर्ति या चित्र नहीं हो सकता है। मास्टरपीस या सर्वोच्च कलाकृति किसी मान्य कलाकार की वह कृति होती है जिसे बड़े परिश्रम और लगन के साथ उसने अपने शिक्षण काल में बनाया हो और जिसके कारण उसे कला पंडित का आदर प्राप्त हो गया हो। वह मास्टरपीस उसकी योग्यता तथा कला क्षमता का प्रमाण मानी जाती

है। कला संधारणा, कला साधना और कला परिश्रम के अन्त में कलाकार की जो सर्वोच्च और सराहनीय कृति मानी जाए वही उसका मास्टरपीस, उसका ताम्रपत्र है। जीनियस अपनी अलग दुनिया में विचरण करता है। मास्टर क्राफ्ट्समैन अपने समाज में रहता है और विधिवत नियमानुसार मूर्ति और चित्र बनाता है। इरादा करके विशेष प्रयास से मास्टरपीस सर्वोच्च कलाकृतियां निर्मित नहीं होती हैं। उच्चकोटि के कलाकार के जीवन में ऐसी कृतियां कम ही होती हैं। कहने का तात्पर्य कि अच्छे से अच्छा कलाकार भी अपनी प्रत्येक कृति को सर्वोच्च कृति का स्वरूप प्रदान नहीं कर सकता।

7. कला और सौंदर्यनटराज की कल्पना

आनन्द कुमारस्वामी के मतानुसार कला में सौन्दर्य की मात्रा की माप-तोल नहीं हो सकती है। खूबसूरती गिनी या तोली नहीं जा सकती। कोई रंगीन चित्र किसी रेखा चित्र से इसलिए ज्यादा खूबसूरत नहीं कहा जा सकता है कि उस तस्वीर में ज्यादा रंग भरे गए हैं या उसमें चित्रांकन बहुत किया गया है। इसी आधार पर यह भी जरूरी नहीं कि सभ्य (शास्त्रीय) चित्र वनवासी लोगों की कला से अधिक सुन्दर ही हों। वनवासी या देहाती लोगों के चित्र शहरी लोगों की तस्वीरों से अधिक खूबसूरत हो सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। रचनात्मक अर्थात मौलिक कला में हमें सौन्दर्य साफ नजर आता है। सौन्दर्य कभी-कभी चित्र में दिखाई नहीं देता है, क्योंकि उसमें कोई अत्यावश्यक चीज, दृश्य या भाव अधिक दिखाई देने लगता है अथवा प्रमुख रहता है। दर्शक मानो कलाकार का आह्वान करता है कि वह अपनी कला सौन्दर्य को दर्शक के ध्यान में लाए। भाव और ओज और सौन्दर्य चित्र में तभी आ सकता है जब कलाकार अपने विचार, साधन और कल्पना से काम ले। बहुत-से लोगों का ख्याल है कि सौन्दर्य चित्र की खूबसूरती, चित्र की बनावट पर निर्भर नहीं है। जब किसी खूबसूरत चीज को देखते हैं तो वास्तव में उस चीज, चित्र या व्यक्ति की आभा है न कि उसका रूप जो हमें उसकी ओर आकर्षित करता है।

कला निरीक्षक

लंदन में रॉयल सोसायटी आफ आर्ट्स के सामने, सन् 1910 में आनन्द कुमारस्वामी ने कहा था, "कला निरीक्षक और कला के इतिहासकारों का कर्तव्य साधारण है। उनका काम अपनी काबिलियत दिखाना नहीं है। वरन् उनका कर्तव्य है कि कलाकार की सेवा अच्छी तरह से करें। उनका कर्तव्य कला उपासकों की कला समझने में सहायता करना है।"

"कला की वह आलोचना ठीक नहीं जो केवल कलाकारों के नाम और उनका समय इत्यादि बताए। भारत वर्ष में अधिकांश लोग कला विमुख होते हैं। हमारे शिक्षित लोग भी भारतीय कला को नहीं समझते हैं। वे केवल बाजारू चित्र और पाश्चात्य नकलचित्रकारों की तस्वीरों को अपने घरों में रखते हैं। शिक्षित समाज भी अच्छे मान्य कलाकारों की मूर्तियों और चित्रों की सराहना नहीं करते हैं। न ही उनको सही रास्ता बताने वाले आलोचक हैं। इसी से एक शताब्दी की अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से जाहिर होता है कि बेकार समय और द्रव्य अंग्रेजी शिक्षा में लगा।"*

सच्चा रसिक और कलाप्रेमी, कलाकार के चित्र में उस भाव को समझ लेता है, जिसका प्रदर्शन कलाकार अपने चित्र में करना चाहता है। यह जरूरी नहीं है कि कला समीक्षक स्वयं कलाकार के आशय या भाव को समझ जाए। हर एक कलाकृति एक कामधेनु की भांति है जो कई रस और भाव दर्शाती है। कला समीक्षक इस बात की खोज में रहता है कि चित्र के अन्दर कौन सी चीज है जिसकी व्याख्या करने की जरूरत है। उसका ध्यान इस बात पर नहीं रहता है कि इस चित्र में कौनसी खूबी या सौन्दर्य है। वह तो इस धुन में रहता है कि यह चित्र किस विषय पर है और क्यों बनाया गया है। हिन्दू शिल्प शास्त्र के पंडितों का कथन है कि रस और चित्र का वास्तविक भाव चित्र के निरीक्षण करने से नहीं ज्ञात हो पाता। चित्र के असली भाव समझने की शक्ति पूर्व जन्म के ज्ञान से उसको प्राप्त होती है। यह देखने में आया है कि बहुत सारे विवेचक और इतिहासकारों को वह शक्ति प्राप्त नहीं है। कवि जन्म से कवि होता है। कवि बनाया नहीं जाता है। इसी तरह कला का रसिक जन्म से रसिक होता है। जो जन्म से कवि या कलाकार होता है और जो अध्ययन तथा श्रम से कवि या कलाकार बनता है उन दोनों की देन में भेद साफ जाहिर होता है। जब आलोचक कला की व्याख्या करने का प्रयास करता है तो उसको अपनी उक्ति को सही साबित करने की फिक्र होती है। और ऐसा वह केवल तर्क-वितर्क द्वारा नहीं कर सकता है। यह वह तभी कर सकता है जब उसमें स्वयं उस कला के सृजन की शक्ति हो, जिसकी वह व्याख्या करना चाहता है। आलोचक द्वारा देखने या सुनने वालों को कला का सौन्दर्य और भाव मूल रूप में नहीं मिल

* *आर्ट एंड स्वदेशी, पृष्ठ 67-68*

पाता है अर्थात दर्शकों को कला के वास्तविक रूप का परिचय आलोचक द्वारा परोक्ष रूप से मिलता है।*

उद्गम और प्रयोग

मूर्ति के निर्माण की प्रेरणा चित्रकार को वही शक्ति देती है, जिसकी प्रतिमा वह कलाकार बनाता है। "मूर्ति वास्तव में न तो ईश्वर है, और न वह देव है। मूर्ति तो केवल ईश्वर का ध्यान और कल्पनामात्र है। ईश्वर का न तो कोई रूप है न आकार है।"

"भारतीय धर्म मनुष्य की जितनी जरूरतें हैं, उन सब को पूरा करता है। हिन्दू धर्म निराकार से साकार मूर्ति चाहे वह मिट्टी की हो या पत्थर की, उसको कलाकार ईश्वरीय रूप देता है। जिस रूप में हिन्दू ईश्वर का ध्यान करता है और जिस क्रिया के अनुसार वह ईश्वर की उपासना करता है, वह सब हिन्दू धर्म में उपस्थित है।"

शुक्राचार्य ने कलाकार (मूर्तिकार और चित्रकार) को उपदेश दिया है कि उसको मंदिरों में उन देवताओं की मूर्तियां जो उसके पूज्य हैं, उनके लक्षणों के अनुसार निर्मित करनी चाहिए। आदर्श मूर्ति बनाने के लिए सभी उपकरण निर्दिष्ट हैं। इसलिए कलाकार (मूर्तिकार) को चाहिए कि वह ध्यान में बैठे और उस देवता के लक्षणों का ध्यान करे, जिसकी मूर्ति वह बनाना चाहता है। उसे किसी चीज को देखकर उसकी नकल नहीं करनी है। जब वह अपने मनन तथा ध्यान के अनुसार मूर्ति का निर्माण करेगा तभी देवता की उचित मूर्ति वह बना सकेगा।...."

"वही मूर्ति सुन्दर और सच्ची मूर्ति हो सकती है जो शास्त्रानुसार बनाई जाए। कुछ कलाकार यह भले ही समझें कि वही मूर्ति सुन्दर हो सकती है जिसे वे अपनी इच्छानुसार बनाएं। किन्तु सच्चे निरीक्षक को वही मूर्ति उपयुक्त लगेगी, जो वह कलाकार शास्त्रानुसार ध्यानपूर्वक बनाएगा . . .।"

शुक्रनीति में यहां तक कहा गया है कि मनुष्य की मूर्ति चाहे कितनी ही आकर्षक क्यों न हो, उसकी अपेक्षा देवता की मूर्ति चाहे वह ठीक तौर से न बनी हो; कहीं ज्यादा मान्य है।

* *डांस आफ शिव, पृष्ठ 43-44*

मूर्तिकार के समक्ष कोई प्रतिरूप (मॉडल) नहीं होता। वह अपने मन में जो लक्षण देवताओं के शास्त्रों में दिए हुए हैं, उसका चित्र बना कर तब उस देवता की प्रतिमा का निर्माण करता है।

शुक्राचार्य ने देवताओं के मानसिक चित्र, ध्यान या लक्षण दिए हुए हैं। यहां पर एक देवी भुवनेश्वरी का शब्दचित्र दिया जाता है जिसके अनुसार मूर्तिकार को भुवनेश्वरी की मूर्ति बनानी चाहिए :

"भुवनेश्वरी देवी के सिर पर मुकुट है। उसका चेहरा सूर्य की तरह चमक रहा है। शक्ति का प्रदर्शन उसके बाहुबल से हो रहा है। उसके मुखारविंद पर तीन नेत्र हैं और कानों में रत्न जड़ित कुंडल हैं। वह साक्षात सरस्वती मालूम होती है और उसकी भुजाओं की मुद्रा से ऐसा प्रकट होता है कि मानो वह अपने भक्तों को दान और आशीर्वाद दे रही है।"*

भुवनेश्वरी देवी के लक्षणों अथवा ध्यान की तरह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती, लक्ष्मी इत्यादि अन्य देवी-देवताओं के लक्षण हमारे शास्त्रों में दिए हुए हैं। कलाकार को इन्हीं लक्षणों के अनुसार उन देवी-देवताओं का मूर्ति-निर्माण करना चाहिए, तभी वह पूजनीय मानी जाएगी।

नटराज की कल्पना

आनन्द कुमारस्वामी ने 'डांस आफ शिव' (नटराज की कल्पना) शीर्षक से एक बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने न केवल शिव के तांडव नृत्य का प्रदर्शन ही किया है या नटराज की मूर्ति या उसके लक्षण दिए हैं वरन् उस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक में आनन्द कुमारस्वामी ने चित्रकला और मूर्तिकला सम्बन्धी कई निबन्ध दिए हैं जो कलाकारों के लिए और भारतीय कला को समझने के लिए बहुत उपयोगी हैं।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में मुझे आज एक घटना याद आ रही है। आज इस संसार में आनन्द कुमारस्वामी के केवल दो ही शिष्य जीवित हैं, जिनको उन्हें गुरु बनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और बाकी सब गुरुदेव की ही तरह स्वर्गवासी हो गए। एक यहां भारत में इस पुस्तक का लेखक जो ईश्वर की कृपा से 92

* *ट्रांसफार्मेशन आफ नेचर इन आर्ट*

वर्ष की अवस्था में जीवित है और दूसरा शिष्य जो अभी जिन्दा है वह मलेशिया में है। उसका नाम है दुरई राजा सिंगम। हम दोनों का आपस में पत्र व्यवहार होता है। मैंने दुरई राजा सिंगम को बताया कि गुरुदेव की तरफ मेरा खिंचाव भारतीय कला और संस्कृति पर जो लेख उन्होंने पत्रिकाओं में श्रीलंका, कलकत्ता और लंदन से लिखे, उनको पढ़ने से हुआ था। फिर जब वह 1908 दिसम्बर में बनारस में आए, जहां मैं उन दिनों विद्यार्थी था, तब से मैं निरंतर कला और भारतीय संस्कृति के संबंध में उनके प्रवचन सुनता रहा और सन् 1916 तक अर्थात आठ वर्ष तक उनसे मेरा संपर्क हिन्दुस्तान में, कश्मीर में और विलायत में रहा। लेकिन गुरुदेव से तुम्हारा परिचय किस प्रकार हुआ? दुरई राजा सिंगम ने लिखा कि मुझे आनन्द कुमारस्वामी से स्वयं मिलने का सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। मैं कैसे उनकी ओर आकर्षित हुआ, यह तुम्हें बताता हूं :

"द्वितीय महायुद्ध में जब जापानी हमारे देश में पहुंच चुके थे, तो मैं एक दिन ट्रेन में सफर कर रहा था। उसी डिब्बे में एक जापानी फौजी अफसर भी सफर कर रहा था। वह बड़े ध्यानपूर्वक एक पुस्तक पढ़ रहा था। मैंने कौतूहलवश उस पुस्तक को देखने के लिए मांगा। मैंने देखा कि वह पुस्तक थी गुरुदेव की 'डांस आफ शिव'। मैंने वह पुस्तक लेकर देखी और तब से मैंने उनकी पुस्तकों को मंगाना-पढ़ना शुरू किया और उनसे पत्र व्यवहार भी शुरू किया। आनन्द कुमारस्वामी तब बोस्टन संग्रहालय, अमरीका में थे।"

दुरई राजा सिंगम आनन्द कुमारस्वामी के परम भक्त और योग्य शिष्य हैं। दुरई राजा सिंगम ने गुरुदेव के पत्रों का संग्रह प्रकाशित किया है और गुरुदेव के विषय में जो लेख लिखे गए हैं, या वक्तव्य दिए गए हैं, उन सबका संकलन प्रकाशित किया है।

उक्त पुस्तक 'डांस आफ शिव' डाक्टर आनन्द कुमारस्वामी ने सन् 1924 में लंदन में छपवाई थी। उसमें 14 अध्याय और 22 चित्र, मूर्तियों और तस्वीरों के हैं। इसका आमुख जगद्विख्यात लेखक रोम्या रोलां ने लिखा है। उन्होंने 'डांस आफ शिव' के लेखक के विषय में अपने आमुख में लिखा है :

"आनन्द कुमारस्वामी रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान उन बहुत बड़े भारतीयों में से एक हैं जो पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता से पूर्णतः अवगत हैं पर जिनको एशियाई तथा भारतीय सभ्यता का गौरव है। उन्होंने इस बात का बीड़ा उठाया

है कि वह पाश्चात्य और पूर्वी विचारधारा का समन्वय कर पाश्चात्य और पूर्वी विचारों का प्रादुर्भाव करें, जिससे संसार की मानव जाति का कल्याण हो। आनन्द कुमारस्वामी ने आवाज उठाई है कि एशिया को बचाओ। एशिया (भारत) के उच्च आदर्श खतरे में हैं। एशिया का पतन होने पर यूरोप भी नष्ट हो जाएगा और एशिया के ऊपर उठने पर यूरोप जिन्दा रहेगा। आनन्द कुमारस्वामी की इस पुस्तक 'डांस आफ शिव' का ध्येय है, आत्मा की महानता बताना और भारतवर्ष की निधि विचारधारा की महानता वताना जो वहां अब तक सुरक्षित है और जिस निधि से सारे संसार का कल्याण हो सकता है, उसको संसार के सामने रखना।

शिव (नटराज)

आनन्द कुमारस्वामी लिखते हैं "महादेव का सबसे बड़ा नाम है नटराज अर्थात किंग आफ एक्टर्स–नर्तकों का राजा। नटराज के नृत्य प्रदर्शन में वही नर्तक भी हैं और वही उस नृत्य को देखने वाले भी। जब नर्तक डमरू बजाता है तो सब उसका नृत्य देखने को आ जाते हैं। जब नृत्य समाप्त होता है तो नटराज आनन्द को प्राप्त हो जाता है। मैं यह नहीं बता सकता हूं कि नटराज के कितने नृत्य उसके उपासकों को मालूम हैं। इन सब नृत्यों का आधार एक ही है– शक्ति का प्रदर्शन . . . . नटराज के नृत्य के तीन खास लक्षण हैं:

(1) ब्रह्माण्ड में जितनी शक्ति और गति है उसके नृत्य की मूर्ति एक ही है। इस मूर्ति का संकेत वृत्ताकार है।

(2) संसार में जो असंख्य आत्माएं भ्रमजाल में पड़ी हुई हैं, उनको मुक्त करना।

(3) नृत्य का तीसरा ध्येय यह दर्शाना है कि संसार का केन्द्र हृदय में ही है।"

'डांस आफ शिव' के बाकी अध्यायों में मानव जाति के कल्याण की विधि और हिन्दू कला का आदर्श, धर्म की परम्परा, भारतीय मूर्ति, भारतीय संगीत, भारतीय नारी का समाज में स्थान, मानसिक एकता, सामाजिक एकता, नव भारत, सौन्दर्य और व्यक्तिवाद है।

8. राजपूत चित्रकला बनाम मुगल चित्रकला

आनन्द कुमारस्वामी ने सन् 1908 से 1916 अर्थात आठ वर्ष भारत के मिनियेचर पेन्टिग (छोटे आकार के चित्रों) की खोज और निरीक्षण किया। उसके फलस्वरूप उन्होंने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा सन् 1916 में दो बहुत बड़े आकार के वाल्यूम 'राजपूत पेन्टिग' के प्रकाशित किए। पहले वाल्यूम में मूलपाठ और दूसरे वाल्यूम में 80 पेन्टिंग्स के मोनोक्रोम फोटो चित्र और दस रंगीन प्लेट कई भारतीय कला शैलियों के उदाहरणार्थ बड़े सुन्दर रूप में दिए गए हैं। उक्त ग्रन्थ की तैयारी में जो कुछ सेवा मुझसे बन पड़ी कलागुरु उसका उल्लेख करना और मेरे प्रति आभार प्रकट करना नहीं भूले। ऐसी थी उनकी महानता।

आनन्द कुमारस्वामी पहले कला समीक्षक और कला इतिहासज्ञ हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से भारतीय चित्रकला की विभिन्न शैलियों यथा : राजपूत, मुगल राजस्थानी और पहाड़ी शैलियों की व्याख्या और विवेचन किया है।

मुगल शैली

राजपूत चित्रकला संबंधी आनन्द कुमारस्वामी की पुस्तक के प्रकाशन से पहले पाश्चात्य देशों के लोग केवल मुगल चित्रों से परिचित थे। वे यूरोपीय जो मुगल दरबारों और भारतीय संभ्रांत परिवारों से परिचित हुए, उन्होंने उनके पास मुगल शैली के छोटे चित्र देखे, जो उनको बहुत पसन्द आए। वह मुगल चित्रकला का सौन्दर्य, कलम की बारीकी और उनकी सजावट देखकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने बहुत सारे छोटे मुगल चित्रों को संग्रहीत किया और उनको यूरोप ले गए। जिसका परिणाम यह हुआ कि मुगल शैली के सर्वोच्च सुन्दर और कला की दृष्टि से सबसे उत्तम मुगल तस्वीरें आज ब्रिटिश म्यूजियम और इंडिया आफिस की लायब्रेरी और अलवर्ट विक्टोरिया म्यूजियम, अमीर परिवारों के महलों में और यूरोप के कई संग्रहालयों में खासकर जर्मनी में, देखने को मिलते हैं। इन

चित्रों के आधार पर कई पुस्तकें यूरोपीय कलाविदों ने लिखी हैं। यदि ये भारतीय चित्र उक्त संग्रहालयों में एकत्र न होते, तो इन पुस्तकों की रचना न हो पाती। सब से बड़ी पुस्तक 'इंडियन मिनियेचर' पर खासकर पर्वतीय (हिमालय की) रियासतों के आश्रित कलाकारों की कृतियों को श्री विलियम आर्चर ने दो बहुत बड़े वाल्यूमों में सन 1973 में प्रकाशित किया है।

आनन्द कुमारस्वामी ने 1910 से 1916 तक भारतवर्ष और इंग्लैण्ड में जो व्याख्यान और लेख भारतीय चित्रकला, खासकर मुगल शैली और पहाड़ी शैली तथा बंगला शैली पर दिए, उनमें उन्होंने अपने श्रोताओं और जिज्ञासुओं को विभिन्न भारतीय कला शैलियों के लक्षण और विशेषताएं बताईं और यह भी दर्शाया कि क्योंकर और कैसे इन छोटे चित्रों की निर्माणक्रिया समाप्त हो गई।

लोगों का ख्याल था कि मुगल शैली के चित्र ईरान से मुगल बादशाहों के दरबार में उन्हीं के साथ आए हैं और उनका उद्गम स्थान तुर्किस्तान, बुखारा, समरकन्द इत्यादि है। इस धारणा को उन्होंने गलत साबित कर दिया।

मुगल चित्रकला का सबसे बड़ा प्रवर्तक और समर्थक बादशाह अकबर हुआ है। वास्तव में अकबर ही मुगल स्कूल का जन्मदाता है। अकबर ने कई हिन्दू कलाकारों को अपने दरबार में रखा। उनसे शाहनामा इत्यादि के कई फारसी ग्रन्थों के लिए चित्र बनवाए। अकबर के दरबार में ईरानी कलाकार भी थे। उन्होंने हिन्दू कलाकारों के साथ मिल-जुलकर एक-दूसरे की शैली को अपनाकर मुगल शैली को जन्म दिया।

अकबर ने महाभारत और रामायण इत्यादि हिन्दू पौराणिक और ऐतिहासिक पुस्तकों के लिए भी अपने दरबार के हिन्दू और मुस्लिम चित्रकारों से चित्र बनवाए। अकबर ने योग वशिष्ठ का अनुवाद फारसी-अरबी में करवाया। और उसके लिए भी चित्र बनवाए। इन चित्रों में भाव और विषय हिन्दू हैं और इनका चित्रण बहुत उच्च कोटि का है।

'राजपूत पेन्टिग' टेक्स्ट में आनन्द कुमारस्वामी ने मुगल चित्रशैली के विषय में लिखा है :

'मुगल चित्रकला' छोटे चित्रों में है, फारसी पेन्टिग पुस्तकों के चित्र हैं। मुगल बादशाहों के महलों की दीवारों में भी बड़े आकार के भित्ति चित्र बने हैं।

मगर जहां ये भित्ति चित्र बने हुए हैं वहां हिन्दू चित्र परम्परा का अनुकरण किया गया है। फ्रेस्को अर्थात बड़े आकार के भित्ति चित्र, अजंता इत्यादि गुफाओं के चित्रों से उनकी प्रेरणा ली गई मालूम होती है। उन भित्ति चित्रों के नमूने आज भी कई पुराने महलों में तथा पहाड़ी राजाओं के महलों की दीवारों पर देखने को मिलते हैं। खास कर चंबा के महलों में बड़े आकार के चित्र पाए गए हैं। तथापि मुगल चित्रकला वास्तव में पोर्टफोलियोज तथा एलबमों में रखने की चीज है। मुगल बादशाह छोटे आकार के चित्रों को अपने मनोरंजन के लिए एलबमों में रखते थे। वह प्रथा अभी भी नवाबी महलों में और अमीर घरों में जारी है। और जो कुछ चित्र अब भारतीय बाजारों में मुगल और पहाड़ी तथा राजपूत शैली के आए हैं और वहां से अमरीका तथा यूरोप के संग्रहालयों में पहुंच गए हैं और जो हमारे भारतीय संग्रहालयों में हैं, वे सब शासन से सम्बन्ध रखने वाले अमीर-उमराओं के संग्रहों के चित्र हैं।

मुगल कला में जो चित्र पाए गए हैं उनसे साफ जाहिर है कि मुगल कला का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि मुस्लिम धर्म के अनुसार देवी-देवताओं को नहीं माना जाता है। हां, पैगम्बरों को वे मानते हैं और पैगम्बरों के कुछ चित्र देखने में आए हैं तथापि मुगल कला की खास विशेषता यह है कि मुगल कला के चित्रों का सम्बन्ध बादशाहों के जीवन, उनके दरबार, शिकार, जानवरों की लड़ाई नाचरंग-मनोरंजन के दृश्य, वनैले जन्तुओं के आखेट, शेर और व्याघ्र के शिकार, घरेलू पशु-पक्षियों की लड़ाई, खासकर हाथी और मुर्गों की लड़ाई के दृश्य, संग्राम में हाथियों पर नदियों को पार करना इत्यादि विषयों पर होते थे। सूफी और सन्तों तथा पैगम्बरों के चित्र भी मुगल कला में बहुत पाए गए हैं। उनके हरम अर्थात जनानखानों के चित्र बहुत क़म मिलते हैं और हरम के जो चित्र हैं वे भी अधिकतर नाचने और गाने वाली नर्तकियों के हैं। बादशाह और उनके मुसाहिबों और राजकुमारों के चित्र (छवि) और शासन से सम्बन्ध रखने वाले नवाबों के चित्र मुगल शैली के चित्रों में बहुत पाए जाते हैं। इसीलिए आनन्द कुमारस्वामी ने मुगल चित्रकला को एरोस्ट्रोक्रेटिक आर्ट अर्थात नवाबी या अभिजातवर्गी कला कहा है।

चूंकि राजस्थानी और पहाड़ी चित्रों के विषय जन जीवन से सम्बन्ध रखते हैं उनमें सामान्य लोगों के घरेलू जीवन-व्यवहार, कृष्ण और राधा तथा

गोप-गोपियों के माध्यम से दिखाए गए हैं। जन साधारण के देवी-देवताओं के और धार्मिक विषयों के विवाह यज्ञोपवीत तथा अन्य जीवन सम्बन्धी संस्कारों के चित्र, राजपूत राजस्थानी तथा पहाड़ी शैली के चित्रों में अधिकांश मिलते हैं। इसलिए आनन्द कुमारस्वामी ने उक्त शैली के चित्रों को "फ्रांसीसी डेमोक्रेटिक" लोक कला कहा है।

राजपूत-राजस्थानी, मुगल और पहाड़ी शैलियां

अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज, फ्रांसीसी और पुर्तगाली लोग जो पहले-पहल भारत आए उनका वास्ता शुरू में मुगल शासकों से पड़ा, उनको मुगल दरबारों में मुगल शैली के चित्र देखने को मिले। अर्थात पाश्चात्य कला प्रेमियों को पहले मुगल शैली के चित्र ही देखने को मिले, उन्हीं को उन्होंने भारतीय कला माना और उसी कला के लघु चित्रों का संग्रह उन्होंने किया। पाश्चात्य देशों के संग्रहालयों में मुगल शैली के चित्र ही अधिकांश देखने को मिलते थे और उन्हीं को पाश्चात्य लोग भारतीय मिनीएचर पेन्टिंग कहते रहे हैं।

इसका श्रेय आनन्द कुमारस्वामी को है कि उन्होंने पहले पहल अपनी वृहद पुस्तक 'राजपूत पेन्टिंग' द्वारा किया, उसमें भारतीय कला के जिज्ञासु और उसके प्रशंसकों को बतलाया कि भारतीय लघु आकार की चित्रकला के तीन अलग-अलग विभाग हैं अर्थात राजपूत-राजस्थानी, मुगल और पहाड़ी चित्रकला।

राजपूत और राजस्थानी चित्रकला का प्रारम्भ पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ। सत्रहवीं शताब्दी तक राजपूत चित्रकार राजस्थान की रियासतों में चित्रांकन करते रहे। सोलहवीं शताब्दी से अट्ठारहवीं शताब्दी तक मुगल दरबारों में आगरा, दिल्ली, हैदराबाद, लाहौर, बीजापुर और लखनऊ इत्यादि में मुगल शैली के चित्रों का प्रादुर्भाव रहा।

राजपूत-राजस्थानी चित्रकला अजन्ता और जैन हस्तलिखित पुस्तकों में चित्रित तस्वीरों के आधार पर मेवाड़, उदयपुर, मालवा, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर और किशनगढ़ इत्यादि राजपूत रियासतों में पुष्पित-पल्लवित हुई। राजपूत और राजस्थानी चित्रकला शुद्ध भारतीय कला है। इस पर ईरानी, चीनी और पाश्चात्य कला का प्रभाव नहीं है।

मुगल बादशाह खासकर अकबर के समय से राजपूत कला की ओर मुगल दरबारों के ईरानी मुस्लिम कलाकारों का ध्यान आकर्षित हुआ। राजपूत-हिन्दू कलाकार मुगल दरबारों में बुलाए गए और आगरा, दिल्ली तथा हैदराबाद के मुसलमान शासकों के दरबारों में पारसी शैली और राजस्थानी शैली का मिश्रण हुआ और मुगल शैली का जन्म हुआ अर्थात मुगल चित्रकला राजपूत और फारसी कला के मिश्रण से उत्पन्न हुई। अकबर ने शाहनामा, महाभारत, रामायण और भागवत पुराण की कथाओं के आधार पर हिन्दू और मुस्लिम कलाकारों से उक्त पुस्तकों के लिए चित्र बनवाए। उक्त ग्रंथ उर्दू फारसी लिपि में और नागरी लिपि में लिखे गए। और जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूं शासकों के जीवन और मनोरंजन से सम्बन्ध रखनेवाले चित्र बनने लगे और संसार को एक बहुत उच्च कोटि की मुगल शैली के चित्र मिले।

मुगल दरबारों में पहाड़ी राजा आया करते थे। उन पर मुगल शासकों के कला प्रेम का असर हुआ। वे मुगल शासकों का अनुकरण करने लगे और उन्होंने मुगल दरबारों के हिन्दू चित्रकारों को निमन्त्रण दिया। इसके अतिरिक्त औरंगजेब जो एक कट्टर मुसलमान था, मूर्तिकला और चित्रकला के सख्त खिलाफ था। उसने मुगल दरबारों के कलाकारों का तिरस्कार किया और उनको जो गुजारा प्रोत्साहन और सहायता राज्य की ओर से मिलती थीं वह बन्द कर दी। इसलिए मुगल दरबारों के कलाकार स्वयं पहाड़ी रियासतों में आश्रय लेने लगे। सब से पहले वे उन्हीं रियासतों में गए जो देश (समतल भूमि) के निकट थीं अर्थात जम्मू, गुलेर और गढ़वाल। जम्मू और गुलेर से कलाकार अन्दर की रियासतों में जैसे चम्बा, मण्डी इत्यादि में गए और वे पहाड़ी राजाओं की रुचि के अनुसार भागवत पुराण, रामायण, महाभारत इत्यादि हिन्दू ऐतिहासिक और धार्मिक ग्रन्थों में दिए गए विषयों की भूमिका पर चित्र बनाने लगे।

चित्रांकन शैली में विषयों के अनुसार परिवर्तन जरूरी हो गया और स्थानीय सौन्दर्य और मानवाकृति के चित्रों में स्थान देना जरूरी हो गया। इस तरह पहाड़ी चित्रकला का जन्म पंजाब की पहाड़ी रियासतों से प्रारम्भ हुआ। राजाओं की रुचि और स्थानीय मानवीय और प्राकृतिक सौन्दर्य में भी परिवर्तन आने लगे। जो शुरू के पहाड़ी चित्र हैं उनमें कुछ मुगल शैली का प्रभाव एक दो पीढ़ी तक जारी रहा और अन्त में पहाड़ी कला मुगल कला से दूर चली गई और

उसने अपना अलग स्वरूप धारण कर लिया। इसका श्रेय आनन्द कुमारस्वामी को है कि उन्होंने अपने ग्रंथ राजपूत पेन्टिग में पहाड़ी रियासतों में पाए गए चित्रों को पहाड़ी कला का नाम दिया, पहाड़ी कला का उल्लेख राजपूत पेन्टिग में स्पष्टतया किया और पहाड़ी कला की विशेषता और भेद दर्शाया।

आनन्द कुमारस्वामी से मेरा प्रथम परिचय बनारस में सन् 1908 की शरद् ऋतु के आरम्भ में हुआ। मैंने उनसे मोलाराम और उसके वंशजों के चित्रों का जिक्र किया। इस बीच मैंने माडर्न रिव्यू में गढ़वाल चित्रकला और मोलाराम के विषय में लेख लिखा जिसे आनन्द कुमारस्वामी ने पढ़ा और जिसका जिक्र उन्होंने राजपूत पेन्टिग* में किया है कि उन्होंने अक्टूबर 1909 के माडर्न रिव्यू में मेरा लेख पढ़कर ही जाना कि किस तरह औरंगजेब के भतीजे सुलेमान शिकोह के साथ मोलाराम के पूर्वज सन् 1658 में श्रीनगर, गढ़वाल आए थे।

गढ़वाल चित्रकला

यहां पर गढ़वाल चित्रकला का विवरण देना अत्यन्त जरूरी है कि कैसे चित्रकार गढ़वाल में आए और कैसे गढ़वाल में चित्रकला का प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि इससे पहाड़ी कला के अन्य केन्द्रों की कला के इतिहास का ज्ञान भी हो सकता है।

भाग्यवश मंगतराम के पुत्र मोलाराम का जन्म 1743 में श्रीनगर, गढ़वाल में हुआ। वह एक अत्यन्त प्रतिभाशाली, विलक्षण पुरुष हुआ है जो कि एक लेखक, कवि, विचारक, विद्वान, धार्मिक और इतिहास का जिज्ञासु, स्पष्ट वक्ता और लगनशील कलाकार था। वह अपने पूर्वज और गढ़वाल के राजवंश और अपने समकालीनों के विषय में कई हस्तलिखित पुस्तकें छोड़ गया है जिनका संग्रह बालकराम (सन् 1867-1956) ने किया। उस संग्रह का भली भांति अध्ययन करने पर विदित होता है कि मोलाराम के दो पूर्वज श्यामदास और हरदास पिता-पुत्र के 1658 के मई मास में दिल्ली से दारा के पुत्र शाहजादे सुलेमान शिकोह के साथ श्रीनगर, गढ़वाल के राजा पृथ्वीपत शाह (1625-1660) के दरबार में आए और करीब दो वर्ष तक श्रीनगर में शाही मेहमान की हैसियत से रहे। अन्त में कुंवर मेदनीशाह ने युद्ध का ढोंग रचकर शाहजादे को औरंगजेब के

* पृष्ठ *23*, *टिप्पणी*

हवाले कर दिया। पारितोषिक में औरंगजेब ने मेदनीशाह (पृथ्वीपत शाह के उत्तराधिकारी) को देहरादून का सारा इलाका दे दिया। तब से सन् 1815 तक देहरादून का इलाका गढ़वाल राज्य के अन्तर्गत रहा। सन् 1803 में गोरखाओं ने गढ़वाल पर आक्रमण किया। घरेलू झगड़े, भयंकर भूकम्प और अकाल इन तीन आपदाओं के कारण, गढ़वाल राज्य आसानी से गोरखाओं के कब्जे में आ गया। राजा प्रदुम्न शाह देहरादून में गोरखों के साथ लड़ते हुए सन् 1804 जनवरी में रण क्षेत्र में काम आए। उसी युद्ध में राज्य का चोबदार मेरा पूर्वज किसन घायल हुआ। वह बाद में फ्रेजर का अर्दली बन गया।

मोलाराम श्रीनगर छोड़कर राज परिवार के साथ देहरादून नहीं गए। वह श्रीनगर में ही रहकर चित्रांकन, अध्ययन और मनन करते रहे।

गढ़वाल चित्रकला की विशेषता के विषय में डा. आनन्द कुमारस्वामी ने राजपूत पेन्टिग* में लिखा है कि गढ़वाल चित्रकला और कांगड़ा चित्रकला में बहुत समानता है। अर्थात कांगड़ा और गढ़वाल कला करीब-करीब एक सी हैं। एक विशेषता गढ़वाल चित्रकला में यह है कि उसके प्रमुख कलाकार मोला-राम का इतिहास लिखित है। गढ़वाल चित्रकला में रुक्मिणी मंगल नायिका भेद में प्रमुख है। शैव और वैष्णव दोनों मतों के चित्र गढ़वाल चित्रकला में बड़ी खूबी के साथ चित्रित किए गए हैं। गढ़वाल चित्रकला के चित्रों द्वारा नारी सौन्दर्य बहुत ही सुन्दरता और कमनीय ढंग से लावण्यमय लचक के साथ चित्रित किया गया है। अजन्ता परम्परा गढ़वाल के चित्रों में पाई गई है। यह चित्रण-विशेषता कांगड़ा और गढ़वाल कला में एक सी है। परन्तु गढ़वाल के चित्रों में प्राकृतिक सौन्दर्य खासकर फूलों से लदी लताएं टेढ़े-मेढ़े वृक्षों पर लिपटी हुई बड़ी आकर्षक ढंग से चित्रित हैं।

गढ़वाल चित्रकला को संसार के सामने प्रथम बार गुरुदेव आनन्द कुमार-स्वामी ने रखा इसीलिए मैंने अपनी रचना गढ़वाल पेन्टिग उनको समर्पित की है।

जब आनन्द कुमारस्वामी ने पहाड़ी कला के चित्रों का संग्रह और समीक्षण शुरू किया उसके 20-25 साल बाद डा. रन्धावा, जे. सी. फ्रेन्च और विलियम आर्चर की खोज के कारण कई पहाड़ी रियासतों की चित्रकला संसार के सामने

---

* *खंड 1*, पृष्ठ *33*

आने लगी है। यद्यपि उन विभिन्न चित्रशैलियों का नामकरण जो उक्त समीक्षकों ने किया वह अधिकांश तथ्यविहीन है। कारण इन कलापारखियों ने जिस राज्य में जो चित्र पाए उनको उसी रियासत की देन मान लिया। वास्तव में पहाड़ी रियासतों में चित्र एक रियासत से दूसरी रियासत में आते-जाते रहे हैं और कलाकार भी एक राज्य से दूसरे राज्य में शरण लेते रहे हैं और अपने आश्रयदाताओं की रुचि और मनोभावना और व्यवहार के अनुसार चित्रांकन करते रहे हैं। मेरी धारणा और खोज के अनुसार पहाड़ी शैली के कलाकार सबसे पहले गुलेर राज्य में हरिपुर पहुंचे और वहीं से कांगड़ा इत्यादि पहाड़ी रियासतों में कला का प्रादुर्भाव होता गया। गुलेर राज्य दिल्ली और आगरे से सबसे नजदीक है और गुलेर ही होकर मुगल बादशाह कश्मीर भी जाया करते थे।

बसोहली कला

कला समीक्षण के दौरान मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बसोहली जैसी एक छोटी-सी पहाड़ी रियासत में मेवाड़ और मालवा से कलाकारों के खानदान बसोहली की राजधानी नूरपुर में आए और वहां वे राजस्थानी शैली में चित्रांकन करते रहे। इस बसोहली की कला पर मुगल शैली का कोई प्रभाव नहीं है और बसोहली शैली के चित्र नूरपुर और उसके निकटवर्ती रियासतों में भी बनते रहे। मेरी धारणा है कि बसोहली चित्रकला मेवाड़ की कला की शाखा है और इसका उद्गम स्थान राजस्थान में है न कि हिमाचल की पहाड़ियों में। मैं उन समीक्षकों से सहमत नहीं हूं जिनकी राय है कि बसोहली चित्रकला का उद्गम-स्थान हिमाचल की पहाड़ी रियासतें हैं।

आनन्द कुमारस्वामी ने राजपूत पेन्टिग में पहाड़ी चित्रकला के केन्द्र जम्मू जिसके अन्तर्गत बसोहली भी है, कांगड़ा, पटियाला, गढ़वाल, सुकेत और मंडी बताए हैं क्योंकि उन्हीं रियासतों के चित्र उनको देखने को मिले थे। उन्होंने डा. रन्धावा, जे. सी. फ्रेन्च और विलियम आर्चर की तरह पहाड़ी रियासतों में भ्रमण नहीं किया। सबसे अधिक अवकाश पहाड़ी चित्रकला को देखने का डा. रन्धावा को मिला क्योंकि वह हिमाचल में कई साल तक बड़े उच्च शासन-कर्त्ता की हैसियत से रहे हैं और उनको पहाड़ी राजाओं ने सहर्ष अपने संग्रह के चित्र बतलाए। उन्होंने भी अक्सर यही गलती की कि जिस राज्य में उनको चित्र मिले उसी राज्य की देन उन चित्रों को बताया।

तथ्य यह है कि मुगल दरबारों से कलाकार पहाड़ी रियासतों में आए और उनके वंशजों ने हिन्दू राजाओं के दरबारों के भागवत और अन्य पुराण, प्रेम सागर, रामायण, महाभारत आदि की कथाओं के और शृंगार काल के रसिक कवियों की कविता नायिकाओं के चित्र बनाए। मोलाराम की कला और कविता ने यह सर्वथा सिद्ध कर दिया है।

पहाड़ी मिनियेचर अर्थात लघु चित्र पहले-पहल कला प्रेमियों को कांगड़ा में मिले थे क्योंकि सर्व प्रथम 19 वीं शताब्दी के शुरू में पाश्चात्य पर्यटक कांगड़ा और सुजानपुर इत्यादि में गए और वहां उन्होंने कांगड़ा पहाड़ी शैली के चित्र देखे। शुरू में जितने भी पहाड़ी चित्र जहां कहीं उनको पहाड़ी रियासतों में मिले वे उन सबको कांगड़ा के चित्र मानने लगे और क्रमशः सब पहाड़ी रियासतों में पाए गए चित्र कांगड़ा पेंटिंग कहलाने लगे। वास्तव में यह बात सही भी है कि सभी पहाड़ी रियासतों के चित्रों की शैली में बहुत समता है। यहां तक कि पहाड़ी कला के विशेषज्ञ भी अक्सर गलती करते हैं। यह तथ्य कांगड़ा और गढ़वाल के चित्रों की तुलना करने से प्रतीत होता है क्योंकि कुछ गढ़वाल कला के चित्र कांगड़ा कला की देन बतला दिए गए। यहां पर मैं दो चित्रों का हवाला दूंगा।

एक चित्र है 'वन में मिलन' जो सन् 1947 में लन्दन में भारतीय चित्रकला की प्रदर्शनी में दिखाया गया था। प्रदर्शनी के चित्रों का जब सूचीपत्र तैयार किया गया तो उसे कांगड़ा का चित्र बतलाया गया। जब वह असली चित्र लन्दन से दिल्ली राष्ट्रीय संग्रहालय में वापस आया तो मैंने उसे देखकर बताया कि वह कांगड़ा का नहीं है। वह गढ़वाल कला की देन है। और मेरी दलीलों को विलियम आर्चर ने ठीक मानकर जब गढ़वाल पेन्टिंग पर एक चौबीस पेज की पुस्तिका सन् 1954 में प्रकाशित की तो उन्होंने इस चित्र को गढ़वाल की देन मानकर गढ़वाल का एक दृष्टांत दिया। तदुपरान्त सन् 54 में मुझे इस चित्र का रेखाचित्र मोलाराम के संग्रह में मिला। ये दोनों चित्र यानी असली रंगीन चित्र की प्रतिलिपि और रेखाचित्र की प्रतिलिपि नं. 32 और नं. 30 'गढ़वाल पेन्टिंग' में प्रकाशित हो चुकी है। एक और चित्र 'राधा और कृष्ण' को भी पहले कांगड़ा की देन बताया गया था। लेकिन वह चित्र वास्तव में गढ़वाल का है और इसके प्रमाण स्थानीय दृश्य चित्र में मौजूद हैं। ये दो दृष्टान्त मैंने यह साबित करने के लिए दिए हैं कि पहाड़ी चित्रकला के केन्द्रों को निर्धारित करने में समीक्षक भी गलती कर सकते हैं।

पहाड़ी चित्रों के लक्षण और विशेषता

जिस तरह पहाड़ी चित्रों में वाह्य रूप में बहुत समता है उसी तरह उनकी चित्रण शैली और सौन्दर्य में भी अद्भुत समता है। यहां पर जो लक्षण और विशेषताएं आनन्द कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक "राजपूत पेन्टिग" में बताई हैं वे दी जा रही हैं।*

पहाड़ी कला के वृक्ष एवं लताओं की शाखाओं, बेलों और पुष्पों में प्रभावकारी बारीकी और सौन्दर्य है। लताओं में लम्बे फूलों की लड़ियां झुकी रहती हैं, जिनमें सफेद और लाल, गुलाबी रंग के छोटे-छोटे पुष्प चमकते रहते हैं। वृक्षों की पत्तियां और उनका मिश्रण इतना घना है कि वृक्ष करीब-करीब काले से दीखने लगते हैं और मन्द वायु से जब वे हिलने लगते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो लता और वृक्ष चल रहे हैं। और जिन पुष्पहीन वृक्षों की शाखाएं पुष्पों से आच्छादित हैं उन फूलों का रंग किसी का बैंगनी है किसी का हल्का हरा और किसी का भूरा, नारंगी और पीला रंग है। कहीं ऐसा लगता है मानो वृक्षों पर रंग-बिरंगी पुतलियां परागपान करती हुई मंडरा रही हैं। कभी ऐसा लगता है मानो विविध रंगों की धूल वृक्षों को आच्छादित किए हुए है।

मानवीय सौन्दर्य तो पहाड़ी कलाकारों की देन है ही, स्त्रियों का रूप रंग और सौन्दर्य, नख-शिख एवं आकार का लावण्यमय चित्रण उनकी पार्श्व छवि (प्रोफाइल) और चेहरों का सौन्दर्य अत्यन्त आकर्षक है।

डा. आनन्द कुमारस्वामी ने कांगड़ा एवं पहाड़ी शैली के चित्रण के विषय में लिखा है : कांगड़ा शैली में जितना अच्छा सौन्दर्य और मानवता का चित्रण हुआ है उतना और किसी शैली में नहीं हुआ। मानव आकृति रूप में जीवन है। पहाड़ी कलाकारों ने मानव आकृति और रूप सौन्दर्य की ओर विशेष ध्यान दिया है। पहाड़ी नारी को छरहरी और इकहरी आकृति में मेंहदी से रंगे हुए नुकीले नखों वाली, कमनीय अंग वाली, लम्बी पतली नागिन-सी बांहों वाली परी के रूप में चित्रित किया है। उनके नेत्र विशाल धनुषाकार हैं। उनके सुन्दर गोरे चेहरों का रंग लाली लिए हुए है।

---

* *राजपूत पेन्टिग, खंड 1, पृष्ठ 21-22*

कांगड़ा कला अपने सराहनीय रूप में सन् 1750 के लगभग पहाड़ी रियासतों में अग्रसर हुई और सन् 1850 से उसके ह्रास (पतन) के चिह्न दिखाई देने लग गए थे। सौ वर्ष तक पहाड़ी चित्रकला का साम्राज्य जम्मू से गढ़वाल तक रहा।

सिख चित्रकला

आनन्द कुमारस्वामी ने राजपूत पेन्टिंग में* "सिख स्कूल" अर्थात सिख चित्रकला का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि 18वीं शती के मध्य भाग में जलन्धर और अमृतसर के आसपास तथा कांगड़ा के कुछ भागों पर सिख शासन हो गया था। उनका कहना है कि 1750 से 1850 तक कुछ चित्र ऐसे बने हैं जिनको सिख चित्रकला की देन कहा जाता है। इन चित्रों में अधिकतर शासक और सामन्तों के चित्र अर्थात छवियां (पोट्रेट्स) हैं। नौजवानों के चेहरों पर भी दाढ़ी है। अमृतसर के गोल्डन टेम्पल की दीवारों पर कुछ भित्तिचित्र अभी भी दिखाई देते हैं, जिन पर अजन्ता के भित्तिचित्रों का प्रभाव लक्षित होता है।

महाराजा रणजीतसिंह का आधिपत्य कांगड़ा रियासत पर हो जाने पर सिख चित्रकला ने कांगड़ा चित्रकला के सम्पर्क में आने से और उन्नति की। सिख शासकों और राजाओं के आखेट, नाच-गाने की पार्टी, बारातों के जुलूस आदि सिख चित्रों के विषय हैं। साधारण कांगड़ा कलम के पहाड़ी चित्रों में और सिख चित्रों में कोई विशेष भेद नहीं है, सिवाय दाढ़ी और बड़ी-बड़ी पगड़ियों के और एक विशेष प्रकार के जामे और चोगों के। वास्तव में सिवाय गुरुओं के चित्रों के तथा उपरोक्त लिबास व दाढ़ी के और सिर पर लम्बे बालों के और कोई भेद नहीं है।

बसोहली चित्रशैली

हमारी प्राचीन मूर्ति और चित्रकला की ओर आधुनिक काल में अंग्रेज शासक और पर्यटकों ने हमारा ध्यान दिलाया और उनके संरक्षण का प्रयत्न आरम्भ किया। लार्ड कर्जन ने 19वीं शताब्दी के आरम्भ में पुरातत्व विभाग की स्थापना की और प्राचीन मूर्तियों, विहारों और मंदिरों का संरक्षण कानून

---

* पृष्ठ *25*

द्वारा करना आरम्भ किया तथा प्राचीन मूर्तिकला और स्तम्भों को नष्ट होने से रोका। भारहुत और अमरावती इत्यादि के विहार जो उस समय तक खण्डहरों के रूप में पड़े थे उनको संभाला। फौजी अफसरों ने अजन्ता इत्यादि गुफाओं की ओर पुरातत्व विभाग का ध्यान आकर्षित किया।

इसी तरह मुगल शैली के चित्रों को पहले पहल अंग्रेज राजदूतों ने मुगल दरबारों में देखा और कांगड़ा शैली के पहाड़ी चित्रों की ओर सबसे पहले मूर क्राफ्ट पर्यटक ने हमारा ध्यान दिलाया।

बसोहली कला के अनोखे चित्र सबसे पहले अमृतसर के बाजार में कला प्रेमियों ने सन् 1816 के लगभग देखे और उनको 'तिब्बती चित्र' कहा गया। उसके कुछ उदाहरण लाहौर संग्रहालय में देखे गए।

राजस्थानी और पहाड़ी राजपूत कला पर सबसे पहले आनन्द कुमारस्वामी ने सन् 1816 में अपनी 'राजपूत पेन्टिंग' उन्होंने बसोहली कला के चित्रों को जम्मू रियासत की देन माना, क्योंकि जम्मू बसोहली रियासत के अन्तर्गत था। उन्होंने जब पहाड़ी क्षेत्रों की और खोज की तो उन्होंने सन् 1918-19 के ए. एस. आई. ए. आर. पृष्ठ 32 में बसोहली चित्रों को जमवाल, बलोरिया (बसोहली का पुराना नाम) की देन बताया।

डा. गोयट्स ने बसोहली के चित्रों का सम्बन्ध जैन हस्तलिखित वसन्त-विलास पुस्तक में दिए गए चित्रों से बताया। चम्बा के संग्रहालय में लकड़ी की तख्तियों पर राजा छत्तरसिंह के समय (1664-70) में बसोहली शैली के चित्र उत्कीर्ण किए हुए देखकर उन चित्रों को चम्बा की देन माना और लिखा कि इस लोक कला का दिल्ली की मुगल कला से मिश्रण होने से बसोहली चित्र बने। डा. रन्धावा भी करीब-करीब डा. गोयट्स से सहमत हैं कि चम्बा की लोककला का मुगल कला से सम्पर्क होने से बसोहली चित्रकला का उदय हुआ। इसी तरह अजीत घोष जो 1925 में बसोहली स्वयं गए थे और जिन्होंने वहां के चित्र लाहौर म्यूजियम में देखे उन्होंने भी अपने एक लेख 'बसोहली प्रिमीटिव' में लिखा है कि बसोहली के चित्र वहां की प्राचीन लोककला की देन हैं।

लेकिन मेरे विचार में यह सब अनुसंधान उक्त कला समीक्षकों की कल्पना है। कोई लिखित सबूत उन्होंने पेश नहीं किया है। वास्तव में बसोहली के चित्र

मेवाड़ और उदयपुर से आए हुए चित्रकारों की देन हैं। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि राजा राजसिंह के समय में उदयपुर के कुछ चित्रकार बसोहली बुलाए गए थे और राजा कृपाल सिंह भी स्वयं उदयपुर गए थे और वहां से कुछ कलाकारों को अपने साथ लाए थे। असली बात यह है कि बसोहली शैली के चित्र और मेवाड़ तथा उदयपुर के राजस्थानी चित्रों में बहुत समानता है। दोनों कलाओं में रंगों का प्रयोग एक-सा हुआ है। स्त्रियों के नख शिख एवं श्रृंगार तथा आभूषण एवं वस्त्र आदि में पूर्ण समानता है। उनकी आकृतियों में भी बहुत समानता है—यथा आंखें बड़ी-बड़ी, नाक नुकीली और माथा पीछे को ढला हुआ, पुरुषों के पहनावे में स्थानीय लिबास है।

बसोहली चित्रकला में जितने रंग प्रयोग किए गए हैं वे प्रायः सभी गहरे हैं। वे कांगड़ा शैली के चित्रों की तरह हल्के नहीं हैं। अधिकतर गहरा हरा रंग, गहरा लाल, भूरा, नीला और पीला रंग बसोहली के चित्रों में प्रयोग किए गए हैं। बसोहली चित्रों के वृक्ष प्राकृतिक नहीं हैं। वे राजस्थानी चित्रों की तरह कृत्रिम हैं। बसोहली के वृक्ष मानों लकड़ी के खम्बों पर त्रिकोण और गोलाकार छातों की भांति हरे, नीले, कहीं-कहीं पीले रंग के घने पत्तों के बने हुए हैं। वृक्षों के पत्ते इतने घने हैं कि गिने नहीं जा सकते। पत्तों पर फूलों का संकेत करने के लिए एक ही कद के बूटे अंकित हैं। किसी-किसी चित्र में फूलों के बदले तितलियों के पर चिपकाए गए हैं। पुरुष और स्त्रियों के चेहरे सदैव पार्श्ववर्ती हैं। चित्रों के विषय कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। बसोहली के चित्रों में जम्मू, कुल्लू इत्यादि के समकालीन ऐतिहासिक राजाओं की छवियां हैं।

बसोहली चित्रकला पर प्रामाणिक पुस्तक डा. रन्धावा की सन् 1959 में प्रकाशित हुई परन्तु बसोहली कला पर गहरे अनुसंधान और खोज की आवश्यकता है।

9. धर्म सम्बन्धी विचार

आनन्द कुमारस्वामी ने धर्म और जीवन के दर्शन शास्त्र के विषय में 'गौतम बुद्ध', 'गोस्पल आफ बुद्ध' और 'मिथ्स आफ दि हिन्दूज़ एण्ड बुद्धिस्ट्स' ग्रन्थ लिखे हैं। अपनी मृत्यु से दस वर्ष पहले से वह वैदिक दर्शन का मनन कर रहे थे। उनके कई लेख वेदान्त पर प्रकाशित हो भी चुके थे।

समय निर्धारण

हमारे धर्म शास्त्रों के निर्माणकर्त्ताओं और काव्यकारों ने ऐतिहासिक घटना या अवतार या व्यक्ति विशेष के समय की निश्चित तिथि नहीं दी है। समय निर्धारण के सम्बन्ध में आनन्द कुमारस्वामी भी उन्हीं का अनुसरण करते हैं।

वेद, उपनिषद, पुराण और महाकाव्यों (रामायण और महाभारत) इत्यादि का तथा शाकुन्तल इत्यादि साहित्यिक रचनाओं का भी समय निश्चित रूप से नहीं दिया गया है। समय का संकेत सहस्रों में किया गया है—यथा लिखा है सगर के 60 सहस्र पुत्र हुए, अमुक ऋषि ने सहस्रों वर्ष तपस्या की। उनका सहस्र से क्या मतलब था, यह नहीं कहा जा सकता है। यदि सहस्र से हजार का अभिप्राय है तो, न तो किसी व्यक्ति के 60 हजार पुत्र होना संभव है, न ही किसी ऋषि का हजारों वर्ष तपस्या करना संभव है। इसी तरह महाभारत में सेना की संख्या का संकेत करने के लिए 'अक्षौहिणी' शब्द का प्रयोग किया गया है। अक्षौहिणी में कितने सैनिक होते थे, यह नहीं कहा जा सकता। जो श्लोक महाभारत में 'अक्षौहिणी' के लिए दिया गया है यदि उसका सही अर्थ लगाया जाए तो जिन सेनाओं ने कौरवों और पाण्डवों की ओर से भाग लिया उनके लिए कुरुक्षेत्र का मैदान तो क्या सारे हरियाणा राज्य में भी जगह नहीं होती। क्योंकि महाभारत में भारतवर्ष के सब राजाओं ने भाग लिया था।

भारत के इतिहास में समय, अशोक 272-233 ईसा पूर्व के काल से निश्चय गणना रूप में होने लगा। उसके शिलालेखों में भी यही लिखा है कि अशोक के राज्याभिषेक के इतने वर्ष बाद अमुक शिलालेख उत्कीर्ण हुआ।

इतिहासों में काल विभाजन ईसा के आधार पर हुआ है। सभी तिथियों की गणना ईसा पूर्व अथवा ईसवी के आधार पर की जाती है। बुद्ध और अशोक के समय की गणना भी ईसा पूर्व में होती है। यदि कभी किसी ने यह साबित कर दिया कि ईसा मसीह तो कभी पैदा ही नहीं हुए तो सारे संसार में तिथियां निश्चित करने और काल गणना के लिए कोई आधार नहीं रह जाएगा। ईसा पूर्व के आधार पर काल गणना यूनानियों ने आरम्भ की और यूनानियों के सम्पर्क से ही भारतवर्ष को यह गणना मिली। यदि सिकन्दर का आक्रमण भारत पर न होता और ग्रीक राजदूत मेगस्थनीज पाटलिपुत्र न आता तो कहा नहीं जा सकता कि इतिहास की घटनाओं की गणना करने की पद्धति क्या होती।

गौतम बुद्ध

गौतम बुद्ध का जन्म 563 ईसा पूर्व और उनके परिनिर्वाण की तिथि 483 ईसा पूर्व सर्व सम्मति से मान्य है। भारत में जितने भी अवतार और महापुरुष गौतम बुद्ध से पहले हुए हैं उनमें से किसी की भी जन्म-तिथि निर्धारित नहीं की गई है। रामायण और महाभारत का समय इतिहास के लेखकों ने अभी तक निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया है। जिन्होंने इस सम्बन्ध में कुछ कल्पना की है उन्होंने भी आधार ईसा को ही माना है।

आनन्द कुमारस्वामी लिखते हैं कि बुद्ध के जीवन चरित्र की बाबत सब जानते हैं। वे 80 वर्ष तक जीवित रहे और पांचवीं शताब्दी के अधिकांश भाग में उन्होंने अपने बौद्ध धर्म का प्रचार 45 वर्ष तक किया। आनन्द कुमारस्वामी को भी स्वीकार करना पड़ा कि बुद्ध के जन्म एवं मृत्यु दिवस के विषय में कहीं भी नहीं लिखा है कि अमुक दिन वह कपिलवस्तु में पैदा हुए तथा अमुक दिन कुशीनगर में उनकी मृत्यु हुई।

आनन्द कुमारस्वामी भी हमारे ऋषियों की तरह ही यह बात निश्चित रूप से निर्धारित करने में रुचि नहीं रखते थे कि कौन कब किस दिन पैदा हुआ था। अर्थात् उनका भी विचार था कि "तारीख में क्या रखा है कि कौन कब पैदा हुआ। देखना तो यह है कि अमुक व्यक्ति अथवा अवतार ने क्या किया। उसके विचार क्या थे व धर्म क्या था और मानव समाज के लिए उसने क्या किया।"

बुद्ध और बौद्ध धर्म सम्बन्धी जो कुछ आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है वह बुद्ध की शिक्षा अर्थात् जीवनादर्श के विषय में लिखा है। गौतम बुद्ध के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही लिखा है कि गौतम बुद्ध की माता माया शुद्धोदन की पत्नी थीं। शुद्धोदन कपिलवस्तु के शाक्य प्रजातंत्र के प्रधान थे। कपिलवस्तु कौशल देश के अन्तर्गत था जिसकी सीमा नेपाल तराई से गंगा तट तक थी। गौतम की जिसका बाल्यकाल का नाम सिद्धार्थ था, माता माया देवी की मृत्यु उसके जन्म के सात दिन बाद होने से सिद्धार्थ का लालन-पालन उसकी मौसी प्रजापति गौतमी ने किया। वास्तव में दोनों बहनें शुद्धोदन की धर्मपत्नियां थीं।

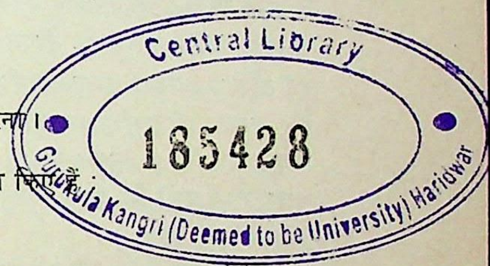
सिद्धार्थ गौतम युवावस्था तक महल की चारदीवारी के अन्दर ही रहा। महल के बाहर किस तरह लोगों का जीवन व्यतीत होता था उससे वह परिचित न था। किन्तु जब वह रथ पर बैठकर महल के बाहर नगर में घूमने गया तो उसको मानव जीवन की वास्तविकता का पता लगा कि मनुष्य युवावस्था से वृद्धावस्था में आता है तो कमजोर होता है, बीमार पड़ता है और अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है। महल में वापस आकर उसने सोचा कि क्या हर आदमी का अन्त इसी प्रकार होता है। क्या मनुष्य इसी जीवन में ऐसी अवस्था में भी पहुंच सकता है कि उसको जीवन के सब दुःख भोगते हुए अन्त में व्याधिग्रस्त होकर मरना पड़े। इसी उधेड़-बुन में वह एक रात अपने सात वर्षीय एकमात्र पुत्र राहुल और अपनी पत्नी को छोड़कर चुपके से अपने घोड़े, कंथक पर सवार हो अपने सारथी छन्न को लेकर जंगल की ओर चला गया। वहां वर्षों की तपस्या के पश्चात् उसने ज्ञान प्राप्त कर वह रास्ता ढूंढ़ निकाला जिससे मनुष्य को सांसारिक दुखों से छुटकारा मिल सकता है। बुद्धत्व प्राप्त कर गौतम बुद्ध ने एक आठ सूत्रीय जीवन आदर्श निर्धारित किया :—

सम्यक दृष्टि—ठीक ज्ञान
सम्यक संकल्प—ठीक उद्देश्य
सम्यक वाक्—सत्य भाषण
सम्यक कर्मान्त—सत्याचरण
सम्यक आजीव—सही तरीके से जीवनयापन।
सम्यक व्यायाम—सही उद्यम

सम्यक स्मृति—सही विचार
सम्यक समाधि—एकाग्र ध्यान।

इसी तरह बुद्ध ने सात बातों का निषेध किया है :

अहिंसा—जीव हत्या न करना
आस्तेय—किसी की वस्तु का अपहरण न करना
व्यभिचार—परस्त्री गमन न करना
असत्य भाषण—झूठ न बोलना
मिथ्या अपवाद—निन्दा न करना
असंयत भाषण—फिजूल बात न करना
चुगली न करना—पीठ पीछे बुराई न करना।



बुद्ध ने जीवन के लिए चार निर्देश निर्धारित किए हैं :

मित्ता—सबसे मित्रता
करुणा—सब जीवों पर, प्राणीमात्र पर दया
मुदिता—सदैव प्रसन्न रहना
उपेक्षा—किसी बात की फिकर न करना और हर्ष भी न करना।

इस चौथे तथ्य को बुद्ध ने और स्पष्ट किया है कि यदि हम चाहते हैं कि कोई बात इस तरह हो और वह उस तरह न हो तो इसकी परवाह (चिन्ता) न करो। अगर मानव इस स्थिति तक पहुंच जाए तो उसको संसार का कोई दुख और चिन्ता नहीं सता सकती और उसको परम सुख प्राप्त होता है तथा, संसार की परम शान्ति उसको प्राप्त हो जाती है।

प्रचार का तरीका

बुद्ध सभा करके अर्थात् एक जगह जनता को एकत्रित कर धर्म या उपदेश नहीं देते थे। उनका अपना निराला तरीका था। वह एक स्थान से दूसरे स्थान को पैदल चलकर जाते थे जिसे चारिका कहते थे। अपनी इन चारिकाओं पर जहां कहीं वह पहुंचते वहीं लोक भाषा में उस समय की स्थिति के अनुसार उपदेश देते थे। उनका शिष्य आनन्द जो हमेशा उनके साथ रहता था उनके

विचारों को कंठस्थ कर लेता था। बुद्ध का सारा मत, उपदेश अर्थात् धर्म का सारांश धम्म पद के पदों (श्लोकों) में संकलित है। हर एक पद के पीछे कोई न कोई घटना या कथा है। अर्थात् प्रत्येक पद का अपना कुछ न कुछ इतिहास है कि क्यों, कब और किसलिए वह प्रवचन बुद्ध ने कहा था।

महापंडित धर्मरक्षित ने हिन्दी में धम्मपद प्रकाशित किया है उसमें प्रत्येक पद के साथ उसकी कथा भी संक्षेप में दी गई है। भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राधा-कृष्णन ने धम्मपद का जो अंग्रेजी अनुवाद किया है वह अत्यन्त उत्तम है। वह धम्मपद उन्होंने "आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय" में एक भाषण के रूप में दिया था। उसकी भूमिका में बुद्ध के जीवन व उनके धर्म पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार आनन्द कुमारस्वामी का "गौतम बुद्ध" सबसे अच्छा जीवन चरित है। गोडार्ड की "बुद्धिस्ट बाईबिल" में बौद्ध धर्म संबंधी सब ग्रंथों का निचोड़ दिया गया है। सबसे सुलभ और सूक्ष्म साधारण सारांश बुद्ध धर्म का, खासकर गृहस्थों के लिए, आनन्द कुमारस्वामी ने "बुद्धा एंड दी गौस्पेल आफ बुद्धिज़्म" में दिया है।

उक्त पुस्तकों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से बुद्ध धर्म के सिद्धान्त और मत का अच्छा ज्ञान हो सकता है। बुद्ध के प्रवचनों का अनुकरण करने तथा उन पर अमल करने से मनुष्य का जीवन सफल होता है। गोडार्ड ने ठीक ही कहा है कि सारे संसार में आज तक धर्म के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनमें सब से श्रेष्ठ शाक्य मुनि गौतम बुद्ध के विचार हैं। बुद्ध को धर्म प्रचारकों में प्रथम स्थान उनके व्यक्तिगत आचरण तथा उनके प्रचार के तरीके एवं प्रवचनों के सरल और लोक भाषा (बोली) में होने के कारण हुआ है। जब तक धर्म प्रचारक, उपदेशक या नेता का व्यक्तित्व उच्चकोटि का न हो तब तक उसका उद्योग सफल नहीं हो सकता। बुद्ध का जीवन प्रेम और करुणामय था। उन्होंने 45 वर्ष तक जो प्रचार किया उसमें उन्होंने अपने अनुयायियों से कहा कि सारे संसार में सब जीवों की भलाई के लिए उद्योग करो और प्राणी मात्र के कल्याण की कामना करो और उनकी सेवा करो। एक बात जिसका बहुत बड़ा प्रभाव लोगों पर पड़ा वह थी बुद्ध का आदेश कि शत्रु का भी भला चाहो, किसी की बुराई न करो। किसी को नुकसान न पहुंचाओ और तृष्णा न करो क्योंकि तृष्णा ही सब दुखों का मूल कारण है।

आत्मा, परमात्मा और विश्वास

आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है कि लोग अक्सर कहते हैं कि बुद्ध आत्मा, परमात्मा और विश्वास को अपने प्रवचनों में स्थान नहीं देते थे। उनके विरोधी मत वाले कुछ लोग उनको नास्तिक भी कहते थे। इसके विषय में आनन्द कुमारस्वामी ने जोरदार शब्दों में कहा है कि लोगों की यह धारणा बिलकुल गलत है। अपनी पुस्तक 'गौतमबुद्ध' में उन्होंने लिखा है* —बुद्ध ने साफ तौर पर कहा है कि वह नाकारवादी नहीं थे। वह किसी तथ्य का खण्डन नहीं करते थे। वह केवल अपने मत का प्रचार करते थे। उन्होंने साफ शब्दों में कहा है कि बिना विश्वास के किसी मत का प्रचार नहीं हो सकता है और प्रत्येक शिष्य के लिए साधना हेतु विश्वास जरूरी है। बिना विश्वास के कोई वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती है। शिष्य को गुरु के मत व सिद्धान्तों पर विश्वास करना नितान्त आवश्यक है। तभी वह अपनी साधना तथा ज्ञान प्राप्ति में सफल हो सकता है। महायोगी अरविन्द ने भी भक्ति को अपने प्रवचनों में सबसे बड़ा स्थान दिया है।

बुद्ध ने सही धर्म अथवा मत का प्रचार किया है जिसका उन्हें स्वयं अनुभव था, तथा जिसे उन्होंने अपनी साधना-तपस्या से प्राप्त किया था। वह दूसरों से सुनी हुई बात का प्रचार नहीं करते थे ? आनन्द कुमारस्वामी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि हमारे दैनिक कार्य का अन्त हो जाए यदि हम उस बात पर विश्वास न करें जिसे उन लोगों ने हम से पहले किया या देखा है। अगर हमारी यह धारणा हो कि जो हमने स्वयं नहीं देखा उस पर क्यों विश्वास करें तो सब खात्मा हो जाए और हम कोई काम कर ही नहीं सकते हैं। आनन्द कुमारस्वामी ने यह भी लिखा है कि बौद्ध ग्रन्थों में कहीं भी यह नहीं लिखा है कि आत्मा नहीं है या ईश्वर नहीं है। न कभी बुद्ध प्रवचनों में 'नाकार' पाया गया है कि आत्मा नहीं है या परमात्मा नहीं है।

असली बात यह है कि बुद्ध किसी सवाल का जवाब हां या ना में नहीं दिया करते थे। लेकिन प्रश्न करने वाला जो बात चाहता था अगर वे उसे करना चाहते थे तो कर देते थे। प्रश्नकर्ता की जो बात वह नहीं करना चाहते थे उसे ना कहते नहीं थे और हां भी नहीं करते थे किन्तु करते भी नहीं थे।

---

* *दी लिविंग थौट्स आफ दी गोतम दी बुद्धा, पृष्ठ 22*

जब कोई भक्त बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित करता था तो वह उत्तर में हां नहीं कहते थे, चुप रहते थे। किन्तु नियत दिन और नियत समय पर भिक्षुओं को साथ लेकर वह भक्त के घर पहुंच जाते थे। इसी तरह जब कोई उनसे पूछता था कि ईश्वर है या नहीं, तो बुद्ध हां या ना नहीं कहते थे। वह यह उत्तर देते थे कि यदि कोई आदमी तुम्हारे पास आए जिसको किसी ने तीर से घायल किया हो तो तुम उसका इलाज करोगे या उससे पूछोगे कि जिस आदमी ने तीर मारा वह काला था या गोरा, ब्राह्मण था या क्षत्री था। तुमको तो उसका उपचार करना चाहिए जिससे उसको आराम पहुंचे।

निर्वाण

निर्वाण के विषय में आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है कि बुद्ध का निर्वाण से क्या मतलब था। इस पर लोग मनमाने अर्थ लगाते थे। निर्वाण के साधारण माने हैं शरीर अर्थात जीवन का अन्त। निर्वाण का कोई स्थान जैसे कि स्वर्ग या नरक नहीं है। न ही कोई ऐसी चीज है जिसे कोई खरीद सकता है। निर्वाण तो ऐसी स्थिति है जिस तक पहुंचने का रास्ता बुद्ध ने बताया है। उन्होंने कहा है कि निर्वाण एक स्थिति है जो इस जीवन में भी प्राप्त हो सकती है और उसे प्राप्त करने के लिए मौत का इंतजार करने की जरूरत नहीं है। जब किसी अंधेरे कमरे में लैम्प ले जाया जाता है तो वहां अंधकार में प्रकाश हो जाता है। कमरा और अंधकार तो वहीं के वहीं मौजूद रहते हैं किन्तु लैम्प ले जाने से वहां सब दीखने लगता है।

निर्वाण मोक्ष तथा संसार में रहते हुए ही स्वर्ग प्राप्ति है। निर्वाण सांसारिक बंधनों अर्थात आवागमन के चक्र का अन्त है। निर्वाण सर्वश्रेष्ठ सुख है। निर्वाण मृत्यु पर विजय तथा दुख का अन्त है। निर्वाण के लिए प्रत्येक बौद्ध को स्वयं प्रयास करना पड़ता है। बुद्ध केवल उसको प्राप्त करने का मार्ग एवं विधि बताते हैं।

आनन्द कुमारस्वामी ने निर्वाण प्राप्ति का मार्ग तथा विधि को इस प्रकार बताया है कि मनुष्य को मनोवृत्ति, कामना और तृष्णा तथा पुनर्जन्म की इच्छा, भ्रान्त धर्म और लालच का परित्याग करना चाहिए और प्रज्ञा तथा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

आनन्द कुमारस्वामी ने 'गोस्पल आफ बुद्धिज्म' में बुद्ध के सिद्धान्तों को और अधिक विस्तार के साथ स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है कि गृहस्थी को भी जीव हत्या नहीं करना चाहिए, बिना दिए दूसरे की चीज नहीं लेनी चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, विद्वेषपूर्ण वाक्य नहीं कहने चाहिए, न किसी से द्वेष करना चाहिए, लालच नहीं करना चाहिए, गुस्सा नहीं करना चाहिए और न ही क्रोधपूर्ण व्यवहार किसी से करना चाहिए। घमण्ड नहीं करना चाहिए। प्रत्येक से विनम्रतापूर्वक व्यवहार करना चाहिए। कुमारस्वामी ने सर्व साधारण के लिए बुद्ध वचन 'मित्ता, करुणा, मुदिता और उपेक्षा' की व्याख्या करते हुए कहा है कि मनुष्य को सबके साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहिए, प्राणि मात्र के प्रति करुणा दया का भाव रखना चाहिए, सदैव प्रसन्न रहना चाहिए तथा हर्ष और दुख में सम भाव से रहना चाहिए। और लिखा है कि बुद्ध ने बिम्बिसार से कहा कि जैसा मनुष्य चाहे अगर वैसा न भी हो तो उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। चिंता न करने से उसे परम सुख मिलेगा तथा वह दुख और चिन्ता से मुक्त होकर संसार में विजय प्राप्त कर लेगा अर्थात परम शान्ति प्राप्त कर लेगा।

आनन्द कुमारस्वामी ने बुद्ध के प्रथम प्रवचन का सारांश इस प्रकार दिया है : अनावश्यक बात न करो, उपयुक्त समय पर बोलो, जीव हत्या न करो, चोरी न करो, व्यभिचार न करो. चुगली न करो, किसी से कटु शब्द न बोलो तथा मादक वस्तुओं का प्रयोग न करो।

अपने सबसे प्रिय शिष्य आनन्द से उन्होंने कहा कि शरीर, वाणी और विचारों द्वारा भी बुराई न करो वरन् भलाई ही करो और बुरी बात का त्याग करो।

अपने इकलौते पुत्र राहुल से जिसको उन्होंने सात वर्ष की अवस्था में अपनी तरह भिक्षु बना लिया था उन्होंने कहा कि—जब कोई काम करो तो उस पर विचार करो कि उसका परिणाम क्या होगा। क्या उस कर्म से स्वयं उसका या किसी दूसरे का हित या अहित होगा। यदि वह कर्म अच्छा है तो उसे करने में कोई हानि नहीं क्योंकि उसका नतीजा अच्छा ही होगा।

बौद्ध धर्म बनाम हिन्दू धर्म

आनन्द कुमारस्वामी के अनुसार बौद्ध धर्म में सामंजस्यता और मतैक्यता है। उपनिषद जो कि हिन्दू धर्म की आधार शिला है उनमें उतना सामंजस्य व विचारों की एकता नहीं है क्योंकि उपनिषदों को समय-समय पर कई ऋषियों ने संकलित किया है। उपनिषदों के रचयिता कई कवि दार्शनिक थे, जबकि बुद्ध धर्म का प्रवर्तक एक ही विचारक है। बौद्ध धर्म गौतम बुद्ध के 45 वर्षों के पर्यटन के दौरान दिए गए उपदेशों का संकलन है जबकि उपनिषद विभिन्न ऋषियों के विचारों के सार का संग्रह है।

ब्राह्मणवाद

आनन्द कुमारस्वामी का ब्राह्मणवाद से तात्पर्य सनातन हिन्दू धर्म से है। ब्राह्मण के लिए मुक्ति का मार्ग तपस्या, विद्या, ज्ञान और परोपकार है। तृष्णा का परित्याग ही मुक्ति है। बुद्ध के समय आत्मा का ज्ञान थोड़े लोगों तक ही सीमित था। किन्तु बुद्ध प्रवचन हर एक स्त्री और पुरुष के लिए थे। वे खुले आम जन सामान्य के लिए उपदेश दिया करते थे अर्थात बुद्ध के अनुसार आध्यात्म-ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति के लिए था चाहे वह किसी भी जाति का हो। बुद्ध भिक्षुओं में 10 प्रतिशत शूद्र जाति के लोग थे। बुद्ध ब्रह्मज्ञानी को ही ब्राह्मण मानते थे। धम्मपद में ब्राह्मण की परिभाषा पर एक पूरा अध्याय है और स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो मानसिक वस्तुओं की आसक्ति को त्याग कर दिव्य वस्तुओं की आसक्ति से भी दूर हो गया है और जो सब प्रकार की आसक्तियों से छूट गया है तथा जो प्राणियों के विनाश और उत्पत्ति को अच्छी तरह जानता है उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूं। बुद्ध जन्म से किसी को ब्राह्मण या शूद्र नहीं मानते थे।

आनन्द कुमारस्वामी का कथन है कि गौतम ने जाति बन्धनों को तोड़ ऊंच-नीच की भावना को समाप्त कर दिया था और उनका कहना था कि हर एक व्यक्ति चाहे वह किसी कुल में पैदा हुआ हो निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त कर सकता है। बुद्ध के समय ब्राह्मण, क्षत्रियों से नीचे माने जाते थे गो कि ब्राह्मण अपने को बुद्धि-वादी (इन्टलेक्चुअल) और नैतिक रूप से उच्च समझते थे। आनन्द कुमार-स्वामी लिखते हैं कि यह मानना पड़ेगा कि इतिहास से यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मण अपनी विद्या, आचरण और योग्यता के कारण उच्च है। यह कहना

आसान है, जैसा बुद्ध भी कहते थे कि कोई व्यक्ति ऊंच-नीच जन्म से नहीं वरन् कर्म से होता है। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि अभी तक इससे अच्छा विभाजन मानव स्थिति का नहीं हुआ है, जैसा कि ब्राह्मणवाद में है कि सबसे अधिक ज्ञानी व योग्य पुरुष का नेतृत्व ग्रहण करना ही उपयुक्त है।*

गौतम का ध्येय केवल निर्वाण (मुक्ति) प्राप्त करना है। जबकि ब्रह्मवाद के अनुसार मुक्ति के अलावा सांसारिक उन्नति भी समाज के लिए जरूरी है।†

वेदान्त

आनन्द कुमारस्वामी के अनुसार भारत में वेदान्त सभी दर्शकों से सर्वोपरि है और वेदों का सार ही वेदान्त है। और यही उपनिषदों का सारांश है। उनका विचार है कि वेदान्त संभवतः बुद्ध धर्म के प्रचार के बाद का है। लेकिन जो विचार 'वृहदारण्य' और छान्दोग्य उपनिषद् में दिए गए हैं वे बौद्ध धर्म से पहले के हैं गो कि उनका यह भी कहना है कि कुछ लोग यह कहते हैं कि बौद्ध धर्म उपनिषद् और सांख्य मत का सारांश है जैसे कि बाइबिल का न्यूटेस्टामेन्ट, ओल्ड टेस्टामेन्ट का सारांश है।

कर्म का सिद्धान्त

बुद्ध मत में कर्म का वहुत बड़ा स्थान है। वास्तव में कर्म पर जितनी मान्यता बुद्ध धर्म में दी गई है उतनी और किसी धर्म में कर्म को नहीं दी गई है। कर्म पर; महायान वुद्धवाद में केवल विशेष ध्यान ही नहीं दिया गया है वरन् महायान मतवालों ने इस जन्म को पूर्व जन्म का ही फल माना है। यहां तक उनका मत अथवा विश्वास है कि हमको इस बात की प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारे अच्छे कर्मों का फल सब जीवों को मिले। क्योंकि महायान के अनुसार मनुष्य केवल अपने ही लिए जीवित नहीं रहता है। उसका जीवन प्राणिमात्र के लिए है और कि जो कुछ भला या बुरा काम कोई व्यक्ति करता है उसका असर औरों पर भी पड़ता है। इसलिए मनुष्य का दायित्व प्राणिमात्र के प्रति और अधिक है। अस्तु कर्म सिद्धान्त पर विश्वास का बुद्ध मत में बहुत बड़ा स्थान है।

---

* *गौस्पल आफ बुद्धिज्म, पृष्ठ 217*

† *वही, पृष्ठ 219*

आनन्द कुमारस्वामी का कहना है कि मनुष्य का जीवन केवल उसके अपने कर्मों का फल हीं नहीं है बल्कि औरों के कर्मों का भी प्रभाव उसके जीवन पर है। और जो कुछ कर्म प्रत्येक व्यक्ति करता है उसका असर सारी मानव जाति पर सदैव के लिए पड़ता है। मनुष्य का वर्तमान जीवन पूर्व जीवन का हीं प्रतिविम्ब है। वह आगे स्पष्ट करते हैं कि वर्तमान जीवन के कार्य पूर्व जन्म पर निर्धारित होते हैं, किन्तु भविष्य इस जन्म के कर्मों के अनुसार बुरा या भला हो सकता है। अर्थात जैसा कर्म हम इस जीवन में करेंगे वैसा हीं उसका फल होगा। किसी की प्रार्थना से बुरे कर्मों का फल क्षमा नहीं हो सकता है तथा अपने कर्मों का दायित्व स्वयं हमारे ऊपर है क्योंकि उसीं पर भविष्य निर्भर है।* हिन्दू धर्म में भी कर्म का सिद्धान्त माना गया है लेकिन ब्राह्मणों के अनुसार कर्मो का फल कर्मकाण्ड पूजा पाठ तथा बलिदान से बदला या कम किया जा सकता है। एक समय ऐसा भी था जब पशु बलि हीं नहीं नर बलि भी दी जाती थी। इसके विपरीत बुद्ध धर्म में बलिदान व जीव हत्या का बिलकुल निषेध है। बौद्ध धर्म के अनुसार प्रत्येक जीव पूज्य है और मनुष्य से किसीं तरह कम नहीं है। इसीलिए बोधिसत्व ने मुक्ति अथवा निर्वाण तब तक उचित नहीं समझा जब तक सबको बुद्धत्व प्राप्त न हो। बोधिसत्व का ध्येय सब जीवों की सेवा करना है। जातक कथाएं बोधिसत्व की सेवावृत्ति की कथाएं हैं।

वैदिक दर्शन अध्ययन

आनन्द कुमारस्वामी के जीवन के अन्तिम दस-पन्द्रह वर्ष दर्शन शास्त्र, खासकर वैदिक अध्ययन में व्यतीत हुए। उन्होंने कला, संस्कृति और इतिहास के सम्बन्ध में लिखना स्थगित कर दिया था। और अपना सारा समय आध्यात्म, दर्शनशास्त्र, और वैदिक साहित्य के अध्ययन में व्यतीत करने लगे थे। इसके सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं अपने मलेशिया निवासी शिष्य दुरई राजा सिंगम को अपने एक पत्र में लिखा कि "पिछले दस-पन्द्रह वर्षों से मैं अपना अधिक समय वैदिक दर्शन शास्त्र और आध्यात्म विद्या के मनन और अध्ययन में लगा रहा हूं बजाय कला और इतिहास आदि के। मेरे सामने इतना काम है कि उसके लिए एक पूरा जीवन भी काफी नहीं है और मैं इस समय अपने अड़सठवें वर्ष में हूं।"

* वही, पृष्ठ *232-233*

दुरई राजा सिंगम किस प्रकार आनन्द कुमारस्वामी के शिष्य बने, यह भी बड़ी रोचक घटना है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब जापानियों ने सिंगापुर और मलेशिया पर कब्जा कर लिया था, सितम्बर के महीने में दुरई राजा सिंगम रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास में सफर कर रहे थे। गाड़ी के उस डिब्बे में एक जापानी फौजी अफसर भी सफर कर रहा था। वह बड़े ध्यानपूर्वक एक पुस्तक पढ़ रहा था। जब उसने उस पुस्तक को नीचे रखा तो दुरई सिंगम ने उस जापानी अफसर की आज्ञा से किताब को देखना चाहा। वह पुस्तक थी आनन्द कुमारस्वामी की कृति 'डान्स आफ शिव—फोरटीन इंडियन ऐसेज़'। दुरई राजा सिंगम ने जापानी अफसर से वार्तालाप शुरू किया और आनन्द कुमारस्वामी की अन्य पुस्तकों के विषय में विस्तारपूर्वक पूछताछ की। दुरई राजा सिंगम की आनन्द कुमारस्वामी के प्रति बड़ी श्रद्धा हो गई और उन्होंने उनसे पत्र-व्यवहार आरम्भ कर दिया। उस समय आनन्द कुमारस्वामी बोस्टन के संग्रहालय, अमरीका में क्यूरेटर थे, जिस पद पर वह 1917 में नियुक्त हुए थे। दुरई राजा सिंगम के पहले पत्र से वह भी आकर्षित हुए और उनके पत्रों का उत्तर इस प्रकार देने लगे मानो दुरई राजा सिंगम उनके सहयोगी हों। दुरई राजा सिंगम के पत्रों को परिशिष्ट में दिया गया है। मेरे पास आनन्द कुमारस्वामी के जो पत्र आया करते थे वे अप्राप्य हो गए हैं।

दुरई राजा सिंगम चाहते थे कि वह आनन्द कुमारस्वामी की जीवनी लिखें और उनसे उनके विषय में कुछ सामग्री प्राप्त करें। इस पर आनन्द कुमारस्वामी ने दुरई राजा सिंगम को लिखा कि वह आधुनिक जीवन-चरित्र लिखने की प्रथा के विरुद्ध हैं। आनन्द कुमारस्वामी का मत था कि आदमी के जीवन के बजाय उसके विचार और उसके कार्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करना उचित है। इसलिए उन्होंने जीवन सम्बन्धी सामग्री के बजाय अपनी पुस्तकों और लेखों का हवाला दिया और दो-तीन पुस्तकें अपने लंदन के प्रकाशक के द्वारा भिजवा दीं। दुरई राजा सिंगम से आनन्द कुमारस्वामी का पत्र व्यवहार 2 सितम्बर, 1947 तक रहा। उनका अन्तिम पत्र मैं यहां पर उद्धृत करता हूं, क्योंकि पांच दिन बाद 7 सितम्बर, 1947 को वह अपनी इहलीला समाप्त कर परम धाम को प्राप्त हुए।

पंत्राचार

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट
बोस्टन 15 मेसाचूसेट्स,
सितम्बर 2, 1947

प्रिय दुरई राजा सिंगम

मैं पिछले हफ्ते आपको 15 अगस्त को मेरे सम्मान में हुए आयोजन* की सामग्री डाक से भेज चुका हूं। मैं चाहूंगा कि मुझे वह रेखाचित्र मिल सके जिसको नन्दलाल वसु ने ठाकुर बन्धुओं के निवास स्थान पर खींचा है। वह किसके पास है। भारतन कुमारप्पा की पुस्तकों का भली प्रकार अध्ययन करना।

भवदीय
आनन्द कुमारस्वामी

---

* *यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि आनन्द कुमारस्वामी की मृत्यु के तीन हफ्ते पहले उनके गुणग्राहकों ने एक बहुत बड़ा सम्मेलन किया, जिसमें कई लेख उनके कार्य, जीवन की उपलब्धियों पर पढ़े गए जो बाद में 'आर्ट एण्ड थौट' शीर्षक से पुस्तकाकार छपे।*

10. रामायण और महाभारत

हमारे देश में राम के जीवन चरित्र को लेकर अनेक कथाएं लिखी गई हैं। किन्तु राम कथा का मूल आधार वाल्मीकि रामायण है। वाल्मीकि ऋषि का सम्बन्ध अयोध्या के राजाओं से था। वाल्मीकि राम और सीता के समकालीन थे और जब लंका से लौटने पर राम ने सीता का परित्याग किया तो सीता वाल्मीकि आश्रम में रही थीं। वहीं लव और कुश का जन्म हुआ। रामायण कथा के श्लोक वाल्मीकि ने लव और कुश को कण्ठस्थ करवा दिए थे।* उस समय वाल्मीकि मालिनी नदी के तट पर कण्वाश्रम में थे जो कोटद्वार से सात मील गढ़वाल हिमालय की तलहटी पर है।

आनन्द कुमारस्वामी का कथन है कि—वाल्मीकि काव्य की विशेषता यह है कि उसमें भलाई और बुराई का क्या परिणाम होता है, उसको बहुत ही अच्छी तरह से दर्शाया है। वाल्मीकि ने मानव जीवन की कथा द्वारा स्थिति के अनुसार धर्म और अधर्म का परिणाम भली भांति व्यक्त किया है। अर्थात हिन्दू शास्त्रों के अनुसार धर्म और अधर्म और कर्मफल मानव जीवन में चरितार्थ किया है।†

वाल्मीकि ने समाज में प्रत्येक वर्ग का एक निर्दिष्ट स्थान माना है। किन्तु वह धन, श्रेणी, वर्ण या जन्म पर आधारित नहीं है। वह बुद्धि और योग्यता के विकास पर निर्भर करता है। वाल्मीकि पूर्व जन्म मानते थे। और यह भी मानते थे कि एक जन्म के कर्म का फल दूसरे जन्म में भोगना पड़ता है। मनुष्य का पद व स्थान समाज में उसके कर्म, पूर्व जन्म के कर्मों द्वारा निर्धारित होते हैं।

रामायण की सारी कथा सीता के जन्म, व्यक्तित्व और उसके जीवन द्वारा प्रतिपादित हुई है। रामायण में राम प्रमुख व्यक्ति नहीं हैं, ऐसी मेरी मान्यता है। सीता का जन्म धरती से हुआ और वह अन्त में धरती में समा जाती है। राम का वनवास, दशरथ की रानी कैकेई की आकांक्षा की पूर्ति के लिए हुआ। कैकेई

---

* *मिथ्स आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स, पृष्ठ 6*

† *वही, पृष्ठ 7*

की सेवाओं के लिए दशरथ वचनबद्ध हो चुके थे कि जो कभी वह मांगेगी उसे पूरा करेंगे। कैकेई ने चाहा कि राम के बदले उसके पुत्र भरत को राज्य दिया जाए और राम चौदह वर्ष के लिए राज्य से निष्कासित कर दिए जाएं। राजा दशरथ वचनबद्ध थे और राम आज्ञाकारी पुत्र थे। राज्य छोड़कर राम वनवास के लिए तैयार हो गए। सीता ने राम के साथ वन जाने का आग्रह किया। और वह भी राम के साथ अयोध्या छोड़कर वन को चल पड़ीं। वन में रावण ने सीता को हर लिया। सीता की खोज हुई और युद्ध के उपरान्त वह रावण की अशोक वाटिका से लाई गईं। राम सीता सहित अयोध्या लौटकर अयोध्या में राज करने लगे। फिर राम ने लोकोपवाद के कारण सीता का परित्याग कर दिया। लक्ष्मण सीता को कण्व ऋषि के आश्रम में मालिनी नदी के तट पर (कोटद्वार गढ़वाल) छोड़ आए। जब राम ने सीता का परित्याग किया था, उस समय वह गर्भवती थीं। कण्व आश्रम में उनके लव कुश नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। बड़े होने पर दोनों भाइयों ने सारी वाल्मीकि रामायण कंठस्थ कर ली। उन्हीं के भजनों द्वारा वाल्मीकि रामायण की रामकथा सुनने में आई। सारी रामायण सीता के व्यक्तित्व पर अवलम्बित है। राम का स्थान गौण है।

यदि रावण ने सीता का अपहरण न किया होता तो न रामायण लिखी जाती न राम व लक्ष्मण सीता की खोज में गए होते। सुग्रीव और हनुमान की सहायता से सीता अशोक वाटिका में मिलीं। अशोक वाटिका कहां थी? इसमें मतभेद है कि रावण की अशोक वाटिका लंका द्वीप में थी या दक्षिण में किसी और जगह अशोक वाटिका थी। हाल में एक इतिहास के लेखक ने लिखा है कि रामायण में घटित घटनाएं मध्य प्रदेश में हुईं न कि समुद्र पार एक टापू लंका में। वह लेखक इस नतीजे पर इसलिए पहुंचे क्योंकि उनको मध्य प्रदेश में कुछ शिलालेखों की प्राप्ति हुई है। एक-दो ताम्रपत्र ग्यारहवीं व तेरहवीं सदी के मिले हैं जिनमें रावण का जिक्र है। यह एक ठोस प्रमाण इस बात का नहीं है कि यह वही रावण है जिसने सीता का अपहरण किया था और जहां अशोक वाटिका में सीता बंदी बनाई गई थीं। रामायण में वर्णित घटनाएं अब तक लंका में मानी गई हैं। लंका (सीलोन) समुद्र पार दक्षिण में है। एक यह भी विषय विचारणीय है कि क्या राम की मदद करने वाले लोग सचमुच बन्दर और रीछ थे या वे लोग दक्षिण के निवासी थे जिनकी रावण से दुश्मनी थी और उन्हें रावण को दण्ड देने का मौका मिला।

आनन्द कुमारस्वामी ने लिखा है कि रामायण की कथा में आश्चर्यजनक घटनाएं हैं। रामायण की कहानी एक महत्वपूर्ण कथा है। वह केवल काल्पनिक ही नहीं है। जो बातें या दृश्य अथवा घटनाएं रामायण में भाग लेने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित हुई हैं वे किसी जादूगर का खेल नहीं हैं। इस कथानक में मानवीय घटनाएं और आदर्शों का प्रदर्शन विभिन्न चरित्रों द्वारा हुआ है।

आनन्द कुमारस्वामी ने सुग्रीव और हनुमान की मित्रता की बड़ी प्रशंसा की है। सुग्रीव एक राजा था जिसके राज्य और स्त्री को बालि ने छीन लिया था। वह अपने राज्य के बाहर रहता था। उसके साथ उसके मंत्री और सेवक रहते थे। संभव है कि यह एक काल्पनिक कहानी हो जिसका आधार कोई बहुत पुरानी कथा हो।*

हनुमान एक आदर्श सेवक है जिसने राम की सेवा में अपने व्यक्तित्व को सफल किया। एक आज्ञाकारी सेवक की तरह (बड़ा पराक्रमी होने पर भी) अपना गौरव राम के सम्मुख एक तुच्छ वानर समझता था। हनुमान रामायण से हजारों वर्ष पहले कोई व्यक्ति था जिसकी कथा सुग्रीव व बाली से जोड़ दी गई है। हनुमान को रामायण में एक बड़ा स्थान दिया गया है। वह एक आदर्श मानव माना गया। जिसकी बराबरी और कोई नहीं कर सकता है। हनुमान का अद्‌भुत जीवन वाल्मीकि ने अन्त तक उसी उच्च स्थान पर रखा है, अर्थात हनुमान शुरू से अन्त तक एक आदर्श व्यक्ति दर्शाया गया है।†

लंका की विजय और रावण की मृत्यु के बाद राम स्वयं सीता को लेने अशोक वाटिका में नहीं गए। उन्होंने रावण के भाई विभीषण से कहा कि जल्दी जाओ और सीता को स्नान करवाकर और चंदन आदि से लेपन कर और आभूषणों से सज्जित कर पालकी में बैठा कर लिवा लाओ।‡

सीता ने करुणामय व दुखद दृष्टि से राम की ओर देखा। तब राम ने सीता से कहा—कि मैंने रावण को परास्त कर तुमको उसके यहां से लाकर अपने वंश का कलंक तो दूर कर ही दिया है। लेकिन तुम पर आरोप है कि तुम एक दूसरे

* वही, पृष्ठ *20*
† वही, पृष्ठ *22*
‡ वही, पृष्ठ *95*

व्यक्ति के घर में रह चुकी हो। अपने गौरव के लिए मेरे लिए यह जरूरी हो गया है कि मैं तुम्हारा परित्याग करूं। कालान्तर में जब राम ने अयोध्या में अश्वमेघ यज्ञ किया। तब वाल्मीकि कुश और लव को लेकर अयोध्या गए। अश्वमेघ के अवसर पर दोनों भाइयों ने बड़े मधुर स्वर में रामायण का गायन किया।

राम का व्यवहार अर्थात् उनका सीता की पवित्रता पर शंका करना और उससे अग्नि परीक्षा द्वारा अपनी पवित्रता को सिद्ध कराना एक निन्दनीय घटना है। यह सम्भव है कि वाल्मीकि की यह कल्पनामात्र हो जो उसने अपनी कविता में राम का यह निन्दनीय पक्ष उजागर किया। यह प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने रामायण का प्रकाशन दो बालकों अर्थात कुश व लव द्वारा करवाया हो जिससे यह सिद्ध हो सके कि इस काव्य की रचना उसने मालिनी के किनारे पर (गंगा के तट पर) कण्व आश्रम में की है।

महाभारत

आनन्द कुमारस्वामी की 'मिथ्स आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स' तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में सीता, राम और रावण तीन प्रधान पात्र हैं, जिनकी कथा में लक्ष्मण, उर्मिला, कैकेई, भरत, हनुमान, सुग्रीव और विभीषण प्रमुख पात्र हैं। यह सारी रामायण की कथा आनन्द कुमारस्वामी ने उक्त ग्रंथ में वर्णित की है, और उस कथा के सम्बन्ध में रवीन्द्रनाथ ठाकुर व उनके शिष्यों के आठ रंगीन चित्र दिए गए हैं।

दूसरे भाग में महाभारत की कथा दी गई है जो कि 126 पृष्ठों में लिखी गई है। इस महाभारत कथा के अन्तर्गत पन्द्रह पौराणिक कथाएं हैं। इसके उपाख्यान नौ रंगीन चित्रों द्वारा चित्रित किए गए हैं।

रामायण और महाभारत के समय के विषय में इधर कुछ प्रख्यात इतिहासकारों ने अपने मत प्रकट किए हैं। किसी ने यह भी कहा है कि महाभारत, रामायण से पूर्व की घटना है। महाभारत से सम्बन्ध रखने वाले लोग उत्तर से अर्थात मथुरा से अयोध्या की तरफ गए और अन्त में पीछे दक्षिण भारत होते हुए लंका तक पहुंचे। और अब हाल ही में एक लेखक ने यह भी लिखा है कि लंका मध्यभारत में थी और वहीं सीता का अपहरण हुआ और वहीं उस अपहरणकर्ता के अधार्मिक क्रूर शासन का अंत हुआ। समय के सम्बन्ध में इतिहासकारों की राय है कि रामायण और महाभारत का समय 2,000 ईसा पूर्व से 1,000 ईसा पूर्व के बीच है।

आनन्द कुमारस्वामी समय और स्थान के वाद-विवाद में नहीं पड़े। वह तो असली बात पर विवेचन करते हैं और उसी के विषय में लिखते हैं कि इन दो महाकाव्यों का क्या ध्येय था और उनके द्वारा भारतीय संस्कृति की वास्तविकता और उसके परिणाम पर क्या प्रकाश पड़ता है।

उन्होंने लिखा है—"महाभारत में सारे हिन्दू भारतीय राष्ट्र के प्राचीन विश्वास और परम्पराओं का संकलन किया गया है। महाभारत के नाम से विदित होता है कि भारतीय संस्कृति और भारतवर्ष के लोगों का जीवन इस बड़ी कथा में निहित है। महाभारत में उसके रचयिताओं ने भारतवर्ष के सामाजिक संगठन धर्म, प्राचीन इतिहास और पौराणिक गाथाएं वर्णित की हैं। उन पुरानी कथाओं का उद्देश्य भारत के इतिहास के आरम्भ से सातवीं सदी के ईस्वी पूर्व तक का चित्रण है। उक्त विषयों का चित्रण महाभारत से बढ़कर और किसी ग्रंथ में नहीं है। भारतवर्ष की पौराणिक गाथाओं में, भारत के निवासियों के सारे जीवन पर किन सिद्धान्तों, नियमों और आदर्शों का प्रभाव पड़ा, यह सन्निहित है। इन पौराणिक गाथाओं का प्रभाव भारतीय लोक जीवन व संस्कृति पर क्रमशः क्या और कैसा पड़ता रहा, यह सब महाभारत से प्रकट होता है। महाभारत में जो पन्द्रह कथाएं लिखी हुई हैं वे अब भी विद्यमान हैं बाकी कथाएं लोप हो गई हैं लेकिन उनका प्रभाव लोक जीवन पर आज भी है।"

बंगाल में एक कहावत है कि "जो महाभारत में नहीं, वह भारतवर्ष में नहीं है।" क्योंकि महाभारत में एक तरफ तो हम आदिम गाथाएं पाते हैं और उसी में इतिहास और राष्ट्रीय जीवन की सारी कथा पाते हैं। महाभारत द्वारा यहां के ऋषियों के गहन चिंतन, मनन और ज्ञान का पता लगता है। महाभारत हमारे जन जीवन की गाथाओं का अक्षय भण्डार है।

आधुनिक समीक्षण

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं आधुनिक काल में रामायण और महाभारत के विषय में कई मत प्रकट किए जा रहे हैं। डा. निहाररंजन राय के अनुसार "इन दो महाकाव्यों की आधार शिला पौराणिक कथाएं (मिथ्स) हैं। इसके माने यह नहीं हैं कि वे कथाएं केवल कल्पना मात्र हैं। यद्यपि संस्कृत शब्द मिथ्या (झूठ) और 'मिथ' (पौराणिक कथा) में कुछ शाब्दिक समता है। किन्तु 'मिथ'

(पौराणिक कथा) कल्पना या मनगढ़न्त कहानी नहीं है। मिथ्स (पौराणिक कथाएं) वास्तविक घटनाओं का संकलन हैं और इतिहास के तथ्यों से कम महत्व की नहीं हैं।"

दो पाश्चात्य इतिहास लेखकों (ब्रंस लौ मलिनोस्क और मर्सिया इलियाड) का कथन है कि "कपोल कल्पना (मिथ) और सच्ची कथा में कोई विपरीतता नहीं है।" उनके अनुसार कपोल कल्पना मानी जाने वाली पौराणिक कथाएं निश्चय ही सच्ची कथाएं हैं।" परम्परागत समाज में पौराणिक कथा द्वारा पता लगता है कि उनके आदर्श और सिद्धांत, परस्पर के व्यवहार, उनके विचार और उनकी धार्मिक परम्पराओं पर उन कथाओं का कितना बड़ा प्रभाव पड़ा है। अस्तु पौराणिक गाथा इतिहास की तथ्यपरक घटनाएं हैं।

आनन्द कुमारस्वामी के अनुसार महाभारत की कथा केवल मात्र दो चचेरे भाइयों (पाण्डव और कौरवों) के बीच का युद्ध नहीं है। वास्तव में महाभारत में कई वैदिक और पौराणिक कथाओं का संकलन है। आधुनिक ऐतिहासिक आलोचक ऐतिहासिक घटना और तथ्यों पर जोर देते हैं। उनकी राय है कि महाभारत मात्र कपोल कल्पना (मिथ) है। यथा डा. डी. सी. सरकार (एक प्रख्यात आधुनिक इतिहास वेत्ता) की राय है कि महाभारत की लड़ाई शुरू में दो छोटे से, दो दलों के बीच की संघर्ष की कहानी रही होगी।

11. नल-दमयंती, शकुन्तला और कच-देवयानी

आनन्द कुमारस्वामी ने अपनी पुस्तक "मिथ्स आफ दि हिन्दूज़ एण्ड बुद्धिस्ट्स" में महाभारत, रामायण और जातक कथाओं के अन्तर्गत हिन्दू इतिहास अथवा पुराण तथा कुछ जातक कथाओं का उल्लेख किया है, जिनमें कृष्ण और महादेव के सम्बन्ध में दो बड़ी कथाएं हैं और बाकी छोटे-छोटे कई उपाख्यान हैं। मैं यहां पर उनमें से केवल तीन उपाख्यानों का सारांश दूंगा।

नल-दमयन्ती की कथा

मध्य भारत में निषाद देश का राजा नल रहता था। और विदर्भ देश में भीम राज्य करता था, जिसकी कन्या दमयन्ती बड़ी रूपवती थी। राजा नल बड़ा प्रतिभाशाली वीर पुरुष था। वह रथ चलाने में और पाशा खेलने में बड़ा निपुण था। एक दिन जब वह अपने उद्यान में घूम रहा था उसने एक हंस को पकड़ा। उस हंस ने नल से कहा कि अगर तू मुझे छोड़ दे तो मैं विदर्भ देश में जाकर दमयन्ती से, जो अत्यन्त रूपवती है, आपके रूप और गुणों की प्रशंसा करूंगा कि निषाद राजकुमार देवताओं से भी ज्यादा सुन्दर है, जिससे वह तुम्हें वरने के लिए तैयार हो जाए। नल ने उस हंस को छोड़ दिया। हंस दमयन्ती के पैरों पर जा गिरा। उसने उसे गोद में ले लिया और हंस से नल की प्रशस्ति सुनकर वह नल पर मोहित हो गई।

दमयन्ती के पिता भीम ने अपनी पुत्री के विवाह हेतु स्वयंवर रचा। देवताओं ने भी दमयन्ती के रूप की प्रशंसा सुनी थी अतः स्वयंवर में वे भी गए। और जब उन्हें नारद मुनि द्वारा यह पता लगा कि दमयन्ती नल को वरना चाहती है, तो पांचों देवताओं ने नल का रूप धर लिया और नल के समीप स्वयंवर में बैठ गए। जब दमयन्ती माला लेकर नल रूप धारियों के सामने आई तो उसने एक के बदले छः नल देखे। उसने अपने दिल में परमात्मा से प्रार्थना की कि मैं तो

अपने हृदय में नल को वर चुकी हूं। जब उसने आंखें खोलीं तो उसे एक ही नल की छवि दिखाई दी। पांच नल रूपधारी देवताओं की अब अलग-अलग मुखाकृतियां हो गई थीं। इस प्रकार उसने असली नल के गले में वरमाला डाल दी और निषाद राज नल के साथ दमयन्ती का विवाह हो गया।

देवता लोग खिसिया गए और उन्होंने ईर्ष्यावश दमयन्ती को दण्ड देना चाहा।

नल जुआ खेलने का शौकीन था। देवताओं ने कलि द्वारा षड्यंत्र रचा। उसने नल को उसके छोटे भाई पुष्कर के साथ जुआ खेलने के लिए उकसाया। जुए में कलि (देवताओं) के प्रभाव से नल अपना सारा राज-पाट हार गया। उसके शरीर पर केवल एक वस्त्र रह गया था, जिसे ओढ़े हुए वह और दमयन्ती वन की ओर चले गए। उनके पास खाने को कुछ न था। नल ने कुछ पक्षियों को चुगते देखा। उसने अपने ओढ़ने की चादर उन पक्षियों के ऊपर फेंकी। पक्षी उसकी चादर को लेकर उड़ गए।

नल ने दमयन्ती को किसी तरह से इस बात पर राजी किया कि वह छः वर्ष तक (जो समय उनके निर्वासन काल के लिए निर्धारित किया गया था) अपने पिता विदर्भ राज के यहां रहे और वह स्वयं किसी राजा का सारथी बनकर जीवन यापन करे। यह बात दमयन्ती की समझ में आ गई और वह मायके चली गई।

समय बीतता गया और नल का कोई पता नहीं चला। दमयन्ती जानती थी कि नल रथ चलाने में बड़ा दक्ष है। उसने पिता से कहा कि आप ऐसा आयोजन कीजिए कि आप पुनः मेरा स्वयंवर एक निकट तिथि में कीजिए—जिस तक किसी भी राजा का पहुंचना कठिन था। दमयन्ती जानती थी कि जिस राजा के यहां नल अपनी आजीविका के लिए सारथी का काम करता होगा, वही स्वयंवर में पहुंचने की हिम्मत कर सकता है।

उधर नल घूमता हुआ अयोध्या के राजा रिपुपर्ण के यहां सारथी बन गया, जब राजा रिपुपर्ण ने दमयन्ती के स्वयंवर का समाचार सुना तो उसने नल से कहा कि तुम अपने सारथीपन की डींग मारते हो, क्या यहां अयोध्या से विदर्भ राज में पहुंच सकोगे। मैं दमयन्ती के स्वयंवर में जाना चाहता हूं। नल को स्वयंवर का समाचार सुनकर आश्चर्य भी हुआ और हर्ष भी, कि हमारे निर्वासन का अन्त हुआ जा रहा है, और मैं दमयन्ती के पास पहुंच सकूंगा।

विदर्भ नगर पहुंच कर वह रथ के घोड़ों को घुड़साल में ले गया और वहां स्वयंवर की कोई तैयारी न देखकर उसे आश्चर्य हुआ। दमयन्ती नल के पास घुड़साल में पहुंची। और इस सब ढोंग की पोल खोल दी। दोनों परस्पर मिले और निष्कासन का समय पूरा होने पर अपने राज्य निषाद में पहुंच गए।

• शकुन्तला की कथा

शकुन्तला महाभारत द्वारा उतनी प्रख्यात नहीं हुई जितनी कि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' द्वारा हुई।

जगत विख्यात नाटककार कालिदास के जन्म और जीवन की तिथि ऐतिहासिक दृष्टि से अभी तक सर्वमान्य रूप में निश्चित नहीं हो पाई है। हाल में संस्कृत के एक बहुत अल्पज्ञात विद्वान और अध्ययनशील पं. सदानन्द अखमोला (गढ़वाल निवासी) ने 'महाकवि कालिदास' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लेखक ने यह स्थापित किया है कि कालिदास का जन्म गढ़वाल (केदारखण्ड) में कालीमठ के समीप एक ब्राह्मण के घर हुआ था। और जब वह उज्जैन में राजकवि नियुक्त हुआ तो वहां उसने मेघदूत काव्य लिखा और दूत को मार्ग बताया कि वह किन-किन स्थानों से उसकी प्रेयसि के पास पहुंच सकता है। वास्तव में कुमारसंभव और मेघदूत द्वारा कालिदास की जीवनी लिखी जा सकती है। लेखक ने कालिदास के विषय में यह भी लिखा है कि एक अछूत कन्या (वादिण) पर मोहित होने के कारण ब्राह्मण समाज ने उसका तिरस्कार कर दिया और वह सुदूर उज्जैन चला गया।

आनन्द कुमारस्वामी ने शकुन्तला की कथा जावा में लिखित 'डी. वान हिन्दूपेन लवरनटन' की पुस्तक के आधार पर लिखी है। राजा दुष्यन्त जिसका राज्य हिमालय से समुद्र तक फैला हुआ था (हस्तिनापुर उसकी राजधानी कही जाती थी) शिकार के लिए हिमालय की तलहटी पर मालिनी नदी के तट पर कण्व ऋषि के आश्रम में शिकार खेलने के लिए पहुंचा। जावानी लेखक के शब्दों में—आश्रम में बड़े सुन्दर पुष्प थे। सब प्रकार के फलों के वृक्ष थे। निर्मल जल वाली मालिनी के तट पर विभिन्न प्रकार के वनैले पशु थे। शेर और व्याघ्र शांति से इधर-उधर घूमते थे। वृक्षों की टहनियों में पक्षी चहचहाते थे। वानर किलकारियां भरते थे। भालू वेदवाक्यों की तरह गुनगुनाते थे। वेद ध्वनि को

सुनकर दुष्यन्त बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपने साथियों को पीछे छोड़ा और वह आगे बढ़ा। उसने चाहा कि वह ऋषि आश्रम में किसी प्रकार की आहट किए बिना प्रवेश करे। उपवन में पहले उसे कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। किन्तु जब वह आगे गया तो आश्रम में राजा ने एक अप्सरा के समान सुन्दरी को देखा। उस रूपवती ने राजा का स्वागत किया और आश्रम की प्रथा के अनुसार राजा को हाथ-पैर धोने के लिए जल दिया। राजा के पूछने पर उसने बताया कि वह एक ऋषि का आश्रम है। ऋषि फल व यज्ञ की सामग्री लेने के लिए वन में गए हैं। महाराज, उनके आने तक आप उनकी प्रतीक्षा कीजिए। राजा उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया। और उसने उस रूपवती से कहा कि यह मुझे मालूम है कि यह कण्व ऋषि का आश्रम है। वह तुम्हारे क्या लगते हैं। आश्रम कन्या ने कहा कि वह मेरे पिता हैं। यहां जो ब्राह्मण मेहमान ठहरे हैं वे मेरे जन्म की कथा आपको बताएंगे। ब्राह्मण ने बताया कि विश्वामित्र ऋषि, जो पहले राजा थे अपने तप से बहुत ही प्रभावशाली हो गए। इन्द्र को भय हो गया कि कहीं वह मेरा सिंहासन न ले लें। अतः उसने इन्द्र लोक की सबसे सुन्दर अप्सरा मेनका से कहा कि तुम जाकर विश्वामित्र का तप भंग करो। वह विश्वामित्र के आश्रम में आई और उसने ऋषि को अपने सौन्दर्य और नृत्य से मोहित कर दिया। कामदेव ने भी अपना कर्त्तव्य किया। फलस्वरूप एक पुत्री का जन्म हुआ। मेनका गर्भवती होने पर हिमालय की गोद में मालिनी के तट पर चली गई। जहां उसने एक कन्या को जन्म दिया जिसे वहीं छोड़कर वह इन्द्रलोक चली गई। कण्व ऋषि वहां घूमते हुए आए तो उन्होंने देखा कि शकुनी पक्षी कन्या को घेरकर उसकी रक्षा कर रहे हैं। ऋषि ने उस कन्या का नाम "शकुन्तला" रख दिया और आश्रम में अपनी कन्या के तुल्य उसका लालन-पालन करने लगे। यह वही शकुन्तला है।

दुष्यन्त ने शकुन्तला से कहा—'बड़ा सुन्दर नाम है तुम्हारा। तुम अप्सरा के समान सुन्दरी भी हो। गंधर्व विवाह के अनुसार हमारा विवाह हो सकता है यदि तुम मेरी रानी बनना स्वीकार करो।' शकुन्तला ने स्वीकृति इस शर्त पर दी कि मुझसे जो पुत्र उत्पन्न होगा वह राज्य का अधिकारी होगा। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। कण्व ऋषि ने भी गन्धर्व विवाह की स्वीकृति दी और भविष्यवाणी की कि 'जो पुत्र उत्पन्न होगा वह सम्राट बनेगा।' जब बालक का जन्म हुआ तो उसके मुख पर राजा बनने के सभी चिह्न थे। फिर जब बालक बड़ा हुआ तो ऋषि ने शकुन्तला को दुष्यन्त के पास भेजा। शकुन्तला ने राजा से कहा कि

दरबार में इस बालक के युवराज होने की घोषणा कीजिए । दुष्यन्त ने उत्तर दिया : ऐ बेशर्म लड़की, मैंने तेरा मुंह भी कभी नहीं देखा, विवाह की तो बात दूर रही । शकुन्तला ने कहा कि ऐ राजा, ऐसे शब्द मत कहो । क्या तुम समझते हो कि हमारे विवाह का कोई साक्षी नहीं था ? परमात्मा, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, जल, वायु, यमराज सभी साक्षी हैं । यह तुम्हारा पुत्र, रूप में तुम्हारे समान है, और तुम्हें देखकर बड़ा प्रसन्न हो रहा है । उसे अपनाओ । दुष्यन्त ने कहा—हे सुन्दरी, ये सब व्यर्थ की बातें न करो और यहां से चली जाओ । इतने में आकाश-वाणी हुई कि "महाराज, यह तुम्हारा पुत्र है । शकुन्तला ने जो-कुछ कहा है वह सत्य है ।" राजा अपने सिंहासन से उतर कर शकुन्तला के पास आया और बोला: "मैं तो उस समय बहुत प्रसन्न हुआ जब मैंने तुम्हें और बालक को देखा । किन्तु अपनी प्रजा की तुष्टि के लिए मैंने तुम्हें तुरन्त सहर्ष स्वीकार नहीं किया । अब आकाशवाणी हो गई है और प्रजा को विश्वास हो गया है कि यह मेरा पुत्र है । मैं इसे सिंहासन पर बैठाता हूं । मैं इसका नाम भरत रखता हूं । शकुन्तला मैं तुमसे क्षमा भी चाहता हूं ।"

जावानी लेखक के अनुसार भरत की शक्ति, महानता और गौरव के कारण ही हमारे देश का नाम भारत रखा गया है । यह कथा पुराणों में वर्णित है । किन्तु जावानी लेखक की कहानी में अंगूठी के खोए जाने का जिक्र नहीं है ।

कच और देवयानी की कथा

पौराणिक कथाओं के अनुसार देवों और असुरों के दो दल थे । उनमें परस्पर युद्ध हुआ करते थे । देवताओं का गुरु बृहस्पति था जो कि उनके यज्ञ व नैतिक कार्य करवाता था । और असुरों का पुरोहित शुक्राचार्य था । इन दो ब्राह्मणों के बीच परस्पर मन्त्रों द्वारा युद्ध हुआ करते थे । इन दो ब्राह्मणों में प्रत्येक इस बात की कोशिश करता था कि उसके यजमानों की जीत हो । देवता सात्विक थे, वे मारकाट में निपुण नहीं थे । और जब कभी वे किसी असुर को युद्ध में मार डालते थे, तो असुरों का गुरु शुक्राचार्य मंत्रों द्वारा असुरों को जीवित कर देता था । इस कारण देवता बड़े दुखी थे कि युद्ध का तो कभी अन्त ही नहीं होगा ।

देवता बृहस्पति के पुत्र कच के पास गए । उससे कहा कि तुम जाकर शुक्राचार्य से उस मृत्युंजय विद्या को सीखकर आओ जिससे मृत्यु को प्राप्त असुर फिर जिन्दा

हो जाते हैं। अगर तुम इस जीवन-विद्या को सीख कर आओगे तो बृहस्पति के बाद तुम्हीं हमारे गुरु नियत किए जाओगे। तुम जाकर शुक्राचार्य की कन्या देवयानी और उसके पिता की सेवा लगन के साथ करो ताकि तुम मृत्युंजय मंत्र सीख सको।

कच शुक्राचार्य के पास गया और उसका शिष्य बन गया। कच ने नम्रता-पूर्वक शुक्राचार्य और देवयानी को अपनी सेवावृत्ति से प्रसन्न किया। वह गाना-बजाना भी जानता था। कच नवयुवक था और देवयानी नवयौवना थी। कच देवयानी को फल-पुष्प अर्पित करता था। देवयानी जो बहुत सुन्दर थी स्वयं गाती थी और वह भी कच का बड़ा ध्यान रखती थी।

असुरों को पता चल गया कि दोनों के बीच प्रेम हो गया है और देवयानी की सहायता से संभव है, कच मृत्युंजय मंत्र को पाने में सफल हो जाए। तब तो असुर कहीं के नहीं रह जाएंगे। एक बार कच जंगल में अपने गुरु की गायों को चराने गया था, असुरों ने उसे मारकर उसका मांस भेड़िये और शृगालों को खाने को दे दिया। जब सायंकाल कच गायों के साथ घर नहीं आया तो देवयानी को शंका हुई कि क्या कच की मृत्यु हो गई। उसने अपने पिता से कहा कि वह कच के बिना जीवित नहीं रह सकती। लगता है कि वह या तो जंगल में भटक रहा है या मार दिया गया है। शुक्राचार्य ने कहा कि तू चिन्ता न कर। मैं कच को बुला देता हूं। अगर वह मार भी दिया गया है तो उसे जिन्दा कर सकता हूं। शुक्राचार्य ने मंत्रोच्चार करके कहा : "उसे आने से मत रोको"। तुरन्त कच अपने गुरु के सामने उपस्थित हो गया। देवयानी ने कच से पूछा—तुम गायों को लेकर घर क्यों नहीं लौटे। उसने कहा—असुरों ने मुझे मार दिया था। किन्तु तुम्हारे पिता के बुलाने पर जी उठा हूं और आ गया हूं।

कच एक दिन फिर वन में फल-फूल लेने गया। असुरों ने उसे मारकर उसकी हड्डी व मांस का लेपन बनाकर समुद्र के पानी में मिला दिया। कच के घर न आने पर देवयानी ने पुनः अपना दुख दुहराया। शुक्राचार्य ने कच को फिर जीवित कर दिया।

अब तीसरी बार असुरों ने कच की हड्डियां चूरचूर कर दीं और उसके शरीर को जला कर उसकी राख को उन्होंने शुक्राचार्य की मदिरा में मिला दिया। मदिरा को शुक्राचार्य पी गया। पुनः जब कच घर नहीं आया तो देवयानी ने रोते

हुए कहा कि कच के बिना मैं जीवित नहीं रह पाऊंगी। शुक्राचार्य ने कहा कि वह उसे फिर जिला देगा। शुक्राचार्य ने कच को आवाज देकर पूछा—"क्यों नहीं आते हो? तुम कहां हो?" कच ने उत्तर दिया: "मैं तो तुम्हारे पेट में हूं। असुरों ने मेरे शरीर को जलाकर तुम्हारी मदिरा में मिला दिया था।" शुक्राचार्य ने कहा कि तुम्हारी विजय हो गई। देवयानी तुम पर मोहित है। तुम मुझसे मृत्युंजय मंत्र ग्रहण करो और जब मैं मर जाऊं तो मुझे मंत्र द्वारा जीवित करना। कच रात्रि के पूर्ण चन्द्र की भांति आया और अपने गुरु के मृत शरीर को देखकर गुरु से प्राप्त किया हुआ मंत्र फूंका और उसके द्वारा उसने गुरु को जीवित कर लिया। कच ने कहा, तुम ही मेरे गुरु, माता-पिता तथा ज्ञानदाता हो। तब शुक्राचार्य ने ब्राह्मणों को आदेश दिया कि तुम कभी भी मदिरा का सेवन न करना। और असुरों से कहा कच की अभिलाषा पूरी हो चुकी है, अब वह सदैव मेरे साथ रहेगा। जब कच अपने घर जाने लगा तो देवयानी ने कहा कि मैं तुम पर मोहित हो गई हूं। मैंने तुम्हें इतनी बार इसीलिए बचाया कि तुम मेरे साथ विवाह करोगे और हम सुखी जीवन व्यतीत करेंगे। कच ने कहा कि तुम मेरी बहिन हो। एक तो गुरु की पुत्री हो, दूसरे मैं तुम्हारे पिता के पेट से निकला हूं। तुम पाणि-ग्रहण करवाकर पाप न करवाओ। मैं अपने धर्म का पालन कर रहा हूं। देवयानी ने कहा कि तुमने मेरी आशाओं पर पानी फेर दिया है, अतः मैं तुम्हें श्राप देती हूं कि जो विद्या तुमने मेरे पिता से सीखी है वह तुम्हें फलीभूत नहीं होगी। कच ने कहा कि चूंकि मैंने धर्म का पालन किया था अतः मैं भी तुम्हें श्राप देता हूं कि तुम्हें भी कोई ऋषिपुत्र नहीं वरेगा। मैं भले ही इस सीखी हुई विद्या से किसी को जीवनदान न दे सकूं किन्तु मैं इस विद्या को अपने किसी शिष्य को सिखला दूंगा ताकि वह मानव-मात्र को प्राणदान दे सके। कच अपने पिता बृहस्पति के आश्रम में गया। देवताओं ने उसका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। स्वागतकर्ताओं में प्रमुख इन्द्र था। उसने कच से कहा कि तुमने हमारे लिए बहुत बड़ी उपलब्धि प्राप्त की है। तुम अपने पिता के बाद देवताओं के पुरोहित होगे और तुम्हारा नाम सदैव संसार में अमर रहेगा।

बुद्ध जातक कथा

बौद्ध धर्म सम्बन्धी कथाओं को जातक कथाएं कहते हैं क्योंकि ये बोधि सत्व के पूर्वजन्म की कथाएं हैं। जातक कथाएं लगभग 600 हैं। अपने ग्रंथ 'मिथ्स

आफ दि हिन्दूज एण्ड बुद्धिस्ट्स' में आनन्द कुमारस्वामी ने केवल सत्रह जातक कथाएं दी हैं। जिनमें से तीन का सारांश यहां दिया जा रहा है—

भिक्षुणी बनने की आज्ञा—बुद्ध महिलाओं को भिक्षुणी बनने की आज्ञा नहीं देना चाहते थे क्योंकि उन्हें भय था कि उनके संघ में आने से व्यभिचार फैलने लगेगा। स्त्रियों की जो स्वाभाविक कमजोरियां हैं उनका बुद्ध को भी ज्ञान था। संसार के इतिहास से भी यही ज्ञात होता है कि स्त्रियों को सदैव ही अधिक उच्च पद नहीं दिए गए। क्योंकि जब स्त्री निर्दयी और असंयमी हो जाती है तो वह कुछ भी कर सकती है। संभवत: यही कारण है कि दुनिया के इने-गिने देश हैं जहां स्त्रियों को बहुत उच्च पदों पर प्रतिष्ठित किया गया हो। बुद्ध के जीवन पर उनके शत्रुओं ने जब बहुत बड़ा लांछन लगाया था तो उसके लिए उन्होंने स्त्रियों का ही उपयोग किया था। जब बुद्ध ने स्त्रियों को भिक्षुणियां बनाने से इन्कार किया तो 500 राजकुमारियां बुद्ध के पास गईं और निवेदन किया कि उन्हें भी भिक्षुणियां बनाया जाए। बुद्ध ने इन्कार किया। फिर उनकी मौसी प्रजापति को जो उनकी छोटी माता थीं, अर्थात् राजा शुद्धोधन की बड़ी रानी मायादेवी की सगी बहिन थीं, उनको लेकर कई स्त्रियां बुद्ध के पास गईं, तब भी उन्होंने इन्कार किया। अन्त में आनन्द जो बुद्ध का सबसे प्यारा शिष्य था और जो सदैव बुद्ध के साथ रहकर उनकी सेवा करता था, वही प्रजापति और कुछ स्त्रियों को लेकर बुद्ध के पास गया और निवेदन किया कि उनको भिक्षुणी बनने की आज्ञा दी जाए तो आनन्द के बहुत आग्रह करने पर स्त्रियों को भिक्षुणी बनने की आज्ञा दी गई। इसके साथ ही बुद्ध ने यह भी कहा कि बौद्ध धर्म जो अपने आदर्श पर 1,000 वर्ष तक रह सकता था अब भिक्षुणियों के कारण 500 वर्ष में या उससे पूर्व ही प्रभावहीन हो जाएगा।

देवदत्त की कथा

देवदत्त बुद्ध का चचेरा भाई था। लेकिन उसे बुद्ध से बहुत ईर्ष्या थी। वह बुद्ध को नीचा दिखाने के साथ-साथ उनके प्राण भी लेना चाहता था। इसीलिए उसने बुद्ध को मारने के षड्यंत्र रचे। पहले तो उसने अजातशत्रु को अपना परम भक्त बनाया। उसे अपने पिता राजा बिम्बिसार को मारकर राज सिंहासन पर बैठने की सलाह दी। अजातशत्रु ने पांच सौ धनुर्धारी सैनिकों को अपने पिता की हत्या करने के लिए तैयार किया। देवदत्त ने बुद्ध को मरवाने के लिए अजातशत्रु

द्वारा 31 धनुर्धर सैनिकों को तैनात करवाया। बुद्ध ने उन सैनिकों को अहिंसा का पाठ पढ़ाया और वे सैनिक ही बुद्ध के भक्त नहीं हो गए वरन् अन्ततः अजातशत्रु भी बुद्ध का भक्त हो गया।

दूसरी बार देवदत्त ने ऐसा किया कि जब बुद्ध राजगृह में एक पहाड़ी पर चल रहे थे तो उसने बहुत बड़ी चट्टानें ऊपर से लुढ़कवाईं। चट्टानें नीचे आईं किन्तु बुद्ध को मामूली चोट के अतिरिक्त अधिक क्षति नहीं पहुंची।

देवदत्त को इससे भी संतोष नहीं हुआ और उसने अपनी दुष्टता नहीं छोड़ी।

कपिलवस्तु में एक बहुत बड़ा मालगिरी नाम का हाथी गलियों में घूमता रहता था और वह प्रतिदिन आठ घड़े शराब पिया करता था। देवदत्त ने उसे आठ के बदले सोलह घड़े शराब पिलाई और उस समय उसे गली में छोड़ा जब बुद्ध गली से गुजर रहे थे। देवदत्त के कुचक्र की सूचना बुद्ध को मिल चुकी थी फिर भी बुद्ध अपनी दिनचर्या के अनुसार उसी रास्ते से आगे बढ़े, जिधर से वह मस्त हाथी आ रहा था। कपिलवस्तु के निवासियों को इसका पता चला। वे भी अपने मकानों व छतों से इस स्थिति को देखने लगे। भिक्षुओं ने बुद्ध को रोका भी, किन्तु वह नहीं माने। अन्त में आनन्द उनको रोकने के लिए स्वयं उनके आगे आकर खड़ा हो गया। हाथी उस बालक को दबोचने के लिए तैयार ही था कि बुद्ध ने जोर से हाथी से कहा—'अरे तुम तो मुझे मारने के लिए नियत किए गए थे, बालक को मारने पर क्यों उतारू हो।' हाथी घुटने टेककर बुद्ध के सामने बैठ गया।

पांच योगियों की कथा

बुद्ध छः साल तक गया में उर्वरा में बोधिवृक्ष के नीचे उस समय की कथा के अनुसार तपस्या व्रत लेकर हठयोग की साधना करते रहे फिर भी उनको परम ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। वह अपनी गलती महसूस कर रहे थे। सुजाता एक ग्वाले की लड़की उनके कृश शरीर को देखकर द्रवित भाव से उनके लिए खीर लाई जिसे बुद्ध ने स्वीकार किया। यह देखकर उनके साथ जो पांच ब्राह्मण योगी थे उन्होंने सोचा कि बुद्ध तपस्या भ्रष्ट हो गए हैं और साधारण मनुष्य की तरह भोजन करने लगे हैं। वे बुद्ध को छोड़कर बनारस (सारनाथ) चले गए और योगियों की तरह तपस्या करने लगे। कुछ व्यापारियों की गाड़ी उस

रास्ते आई। उनकी गाड़ी कीचड़ में फंस गई। उन्होंने भी बुद्ध को कुछ भोजन दिया। इस पर उनकी गाड़ी चल पड़ी। बुद्ध को अब असली ज्ञान प्राप्त हुआ और वह बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए उद्यत हुए। और बनारस (सारनाथ) गए। वहां उनके पुराने पांच ब्राह्मण योगी शिष्यों ने दूर से देख कर अपने मन में कहा, देखिए गौतम आ रहा है। हम उसका अभिवादन खड़े होकर नहीं करेंगे। उन्होंने देखा कि सिद्धार्थ अब हृष्ट-पुष्ट व कांतिमान हो गया है। और वह तपस्या से हारकर हमारे पास आ रहा है। चूंकि वह राजघराने का है हम उसे बैठने की जगह देंगे। बुद्ध उनके मन के भावों को समझ गया। और उनके प्रति करुणा और प्रेम का प्रदर्शन अपने मन में करने लगा। जिसका असर उन पांच योगियों पर हुआ और उनके अपने विचार व भावनाएं बुद्ध के प्रति बदल गईं। वे उठकर बुद्ध के पास गए उन्होंने बुद्ध के पांव धोये और उनके स्वास्थ्य के विषय में पूछा। गौतम ने उनसे कहा कि मैंने अब ज्ञान (बुद्धत्व) प्राप्त कर लिया है। अब बुद्ध ने प्रथम वार बनारस (सारनाथ) में धर्म का प्रचार प्रारम्भ किया।

12. मूल्यांकन

आनन्द कुमारस्वामी की मृत्यु के थोड़े दिन पहले सन् 1947 में वाशिंगटन में उनके सम्मानार्थ एक बड़ा समारोह हुआ था जिसमें डा. रिचर्ड एटिंघसन ने कहा था—"आनन्द कुमारस्वामी के जो कि कई वर्षों से बोस्टन संग्रहालय के कला विभाग में भारतीय, परसियन और मुस्लिम कला के अनुसधानकर्ता (फैलो) रहे हैं, समान विभिन्न विषयों पर इतने प्रकाशन संसार भर में और किसी एक व्यक्ति के नहीं हैं। उनकी खोज और अध्ययन दर्शनशास्त्र, आध्यात्म विद्या, धर्म, प्रतिभा-विज्ञान, भारतीय साहित्य, भारतीय कला, इस्लामी कला, मध्य-कालीन कला, गंधर्व विद्या, भू-विज्ञान और खासकर समाज में कला का स्थान आदि विषयों पर है उतना और किसी का नहीं है। उनके अध्ययन के परिणाम-स्वरूप उपरोक्त विषयों पर कई बड़ी-बड़ी पुस्तकें, निबन्ध और समीक्षाएं न केवल हिन्दुस्तान में वरन् श्रीलंका इंग्लैंड, अमरीका, फ्रान्स, जर्मनी, फिनलैंड, स्वीडन और पुर्तगाल तथा रूमानिया आदि में प्रकाशित हो चुकी हैं।"*

आनन्द कुमारस्वामी की सत्तरवीं वर्षगांठ के अवसर पर एरिक गिल ने उनकी प्रशंसा में कहा—"औरों ने भी सत्य, जीवन, धर्म और मनुष्य के कार्यों के विषय में लिखा है, औरों ने भी बहुत अच्छी और शुद्ध अंग्रेजी में लिखा है, औरों ने भी सुचारु रूप से भाव व्यक्त किए हैं औरों को भी क्रिश्चेनिटी, हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म का गूढ़ ज्ञान था, और भी श्रृंगारिक चित्रकला, मूर्तिकला का मतलब समझते थे, और भी अच्छी और बुरी कला के भेद को समझते थे, औरों का भी ज्ञान भण्डार बहुत बड़ा था, औरों ने भी प्रेम किया, और लोग भी दयालु और उदार हुए, किन्तु मैंने कोई ऐसा व्यक्ति नहीं देखा, अकेले जिस एक ही व्यक्ति में उपर्युक्त सभी गुण और शक्तियां मौजूद हों। मैं यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकता कि मैं उनका शिष्य हूं, क्योंकि शायद वे मेरी यह स्वीकारोक्ति पसन्द न करें। मैं यह पुरजोर शब्दों में कहता हूं कि आनन्द कुमारस्वामी के सिवाय और किसी दूसरे व्यक्ति ने सत्य (ट्रुथ), कला (आर्ट),

* *बी० बी० सी० ब्राडकास्टिंग (14-2-47)*

जीवन (लाइफ), धर्म (रिलीजन), धार्मिक आचरण (पाइटी) के विषय में इतना गूढ़ ज्ञान और इतनी समझदारी के साथ व्यक्त नहीं किया है ।"*

बड़ौदा संग्रहालय के क्यूरेटर डा. मोयट्स ने आनन्द कुमारस्वामी के विषय में लिखा है—"आनन्द कुमारस्वामी पहला व्यक्ति था जिसने एशिया की कला और संस्कृति की ओर संसार का ध्यान दिलाया और बताया कि मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन कैसे आदिम काल से परिपक्व हुआ और एशिया की कला और संस्कृति पाश्चात्य देशों की कला और संस्कृति से कम नहीं है । पाश्चात्य देशों के कला सौन्दर्य सम्बन्धी आदर्शों पर यूनान (ग्रीक) का प्रभाव था । आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय कला के सौन्दर्य और आदर्श को संसार के सामने रखा" ।† हैवेल ने कुमारस्वामी के भारतीय कला सम्बन्धी विचारों का प्रदर्शन और अधिक विस्तारपूर्वक किया : "आनन्द कुमारस्वामी ने इस अपरिष्कृत भौतिकवादी सभ्यता के जमाने में भारतीय कला आदर्शों और विज्ञान की व्याख्या करने में और भारतीय कला के आध्यात्मिक रूप को प्रस्तुत करने में सबसे अधिक भाग लिया है । कैप्टन ड्यूलूविक (अंग्रेज) ने उसी समारोह में कहा : आनन्द कुमारस्वामी के द्वारा प्राचीन भारतवासियों के पूर्वजों के कला आदर्शों तथा उनकी चित्रकला और मूर्तिकला उनके बुद्धि विकास और आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण हुआ है । उन्होंने प्राचीन भारतीय मान्यताओं को पुनर्स्थापित किया है कि किसी भी राष्ट्र के निर्माता व्यवसायी (ट्रेडर्स) और राजनीतिज्ञ (पोलिटिशियन्स) नहीं वरन् कलाकार और कवि होते हैं । ऐसे राष्ट्र के निर्माता कलाकार और कवियों को कुमारस्वामी प्रोत्साहन देते थे जिनमें ऐसे गुण उपस्थित हों जो कि राष्ट्र का उत्थान कर सकें और उसे जीवित रख सकें । इस प्रयास के लिए मापदण्ड, राष्ट्रीय कला और देश सेवा की उन भावनाओं की जागृति है, जो सारे राष्ट्र की मनोवृत्ति को प्रभावित करें । राष्ट्र के जीवन में राष्ट्रीय संस्कृति और कला की परम्परा में ऐक्य तथा लोगों के जीवन का प्रदर्शन अत्यावश्यक है । इसलिए आनन्द कुमारस्वामी ने सब प्रकार के कलाकारों का यह परम दायित्व बताया है कि वह कला के आदर्शों की परम्परा का अनुसरण करें । सापूर्जी सोरावजी ने लिखा है कि आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय संस्कृति को प्राचीन काल की वंशानुगत परम्परा से जोड़ा है । फ्रांस के अलबर्ट ग्लाइज ने लिखा है कि पूर्वी

* *आर्ट एण्ड थाट, पृष्ठ 15*

† *वहीं, पृष्ठ 95*

सभ्यता और खासकर हिन्दू विचार के प्रचार में कुमारस्वामी की बहुत बड़ी देन है। वह सारे संसार में आज सबसे योग्य प्रचारक हैं। उन्होंने कहा है कि परम्परागत कला मनुष्य के विकास से सम्बन्ध रखती है। उस कला का ध्येय मनुष्य है। वह कला के द्वारा अपना प्रदर्शन करता है। यही नहीं, कुमारस्वामी ने पुराने कला सम्बन्धी लक्षण चिन्ह और सिद्धान्तों को भली भांति समझाया है। आनन्द कुमारस्वामी के अनुसार कला (चित्र और मूर्ति कला) में आदर्श सौंदर्य होना चाहिए। कला, कलाकार के भाव और उसके विचारों का प्रतिरूप है। कलाकार की कला उसकी उपलब्धि तो है ही साथ ही वह उसके समय के वातावरण और जीवन की भी देन है। आनन्द कुमारस्वामी का कहना है कि कला, प्रकृति में जो विभिन्न भाव हैं, उनमें सामंजस्य उत्पन्न करती है कलाकार उसी तरह कला नियमों का पालन करने में प्रसन्न होता है जैसा कोई साहित्यकार व्याकरण के नियमों का पालन करने में होता है। कला के भावों और ध्येय का प्रदर्शन, नियम, उसके लक्षण और चिह्नों द्वारा होता है, और उसको समझने के लिए कला की परम्परा और उसके नियम तथा आदर्शों को समझना जरूरी है। उन्होंने रस्किन को उद्धृत करते हुए कहा कि कला का उद्देश्य यह होना चाहिए कि देखने वाले में उच्च भाव जागृत हों; उस कलाकृति को देखने से उसे आनन्द हो। लीनार्डो डाविन्सी के अनुसार वह चित्र या मूर्ति सर्वोत्तम है जिसमें कि उस भाव या आदर्श का प्रदर्शन हो जिसको उस मूर्ति द्वारा व्यक्त किया जाना है। भारतीय कला के उद्देश्य और आदर्श के विषय में आनन्द कुमारस्वामी के विचारों से हैवेल साहब के विचार पूरी तरह से मिलते हैं क्योंकि हैवेल भी यह मानते हैं कि भारतीय कला लाक्षणिक और रहस्यवादी तथा गूढ़ और लोकोत्तर है। कलाकार कवि और उपासक होता है। भारतीय कला का ज्यादा सम्बन्ध कल्पना शक्ति और आध्यात्मिकता से है न कि अमूर्तता (एबस्ट्रेक्शन) से। श्रीमती क्रामरिस का कहना है कि भारतीय कला भारतवर्ष की संस्कृति, विश्वास, सभ्यता और इतिहास का दर्पण है। अर्थात् भारतीय कला भारत के जीवन आदर्श और लोगों की कामनाओं का प्रदर्शन करती है। विल ड्यूरेन्ट ने कहा है कि भारतीय कलाकार मोहनजोदड़ो अर्थात् 5000 वर्षों से सौन्दर्य के आदर्श का प्रदर्शन करते आए हैं। बरकन हैड ने 1910 में लंदन इंडिया सोसाइटी के सामने कहा था कि भारतीय कला संसार में सबसे महान है। और भारतीय कला आदर्श और उसकी परम्परा उस महानता के साथ अब तक चली आ रही है जिसकी बराबरी शायद ही संसार का कोई देश कर सके।

परिशिष्ट -1

कुछ महत्वपूर्ण पत्र

आनन्द कुमारस्वामी के शिष्यों में से इस समय जहां तक मुझे ज्ञात है, एशिया में केवल दो ही शिष्य जीवित हैं। एक हैं मलेशिया के दुरई राजा सिंगम जो 1945 में पत्र द्वारा उनके शिष्य बने। जीवन में वह स्वयं आनन्द कुमारस्वामी से कभी नहीं मिल पाए क्योंकि वह थे मलेशिया में और आनन्द कुमारस्वामी थे बोस्टन, अमरीका में। आनन्द कुमारस्वामी का दूसरा जीवित शिष्य मैं हूं। भारत और इंग्लैण्ड में मेरा उनसे व्यक्तिगत सम्पर्क 1908 से 1917 तक रहा। उसके पश्चात् जब 1917 में आनन्द कुमारस्वामी अमरीका चले गए तब पत्र-व्यवहार द्वारा मेरा सम्पर्क उनके साथ रहा। जब वह 1926 में भारत आए तब फिर मैं उनके सम्पर्क में आया। किन्तु खेद है कि अमरीका से जो पत्र वह मुझे भेजा करते थे वे अप्राप्य हैं।

दुरई राजा सिंगम ने एक दिन मलेशिया में रेल के डिब्बे में सफर करते हुए एक जापानी अफसर को आनन्द कुमारस्वामी की पुस्तक 'डांस आफ शिव' पढ़ते हुए देखा। स्वयं उसे पढ़कर वह इतने प्रभावित हुए कि वह आनन्द कुमारस्वामी से पत्र-व्यवहार करने लगे और उनके शिष्य बन गए। आनन्द कुमारस्वामी ने दुरई राजा सिंगम को और उनके पुत्र को जो पत्र भेजे थे सौभाग्य से वे उनके पास सुरक्षित रहे जिनकी प्रतियां उन्होंने कृपया मेरे पास मलेशिया से भेजी हैं। आनन्द कुमारस्वामी के उन पत्रों को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स
बोस्टन, मैसैचूसैट्स, संयुक्त राज्य अमरीका
13, दिसम्बर 1945

प्रिय श्री राजा सिंगम,

आपके 14-11-45 के पत्र के लिए धन्यवाद। मैं इसके लिए आपका आभारी हूं कि आप मेरे कार्य में दिलचस्पी रखते हैं। मुझे अफसोस है कि मैं आपकी बहुत मदद नहीं कर सकता हूं। जिन किताबों को आपने मांगा है वे अब अप्राप्य हैं और मैं उनकी नकल करने में असमर्थ हूं। मैं इस समय 68 वर्ष की आयु का हूं और मेरे हाथ में इतना काम है जिसको मैं एक जीवन में भी पूरा नहीं कर सकता हूं।

आपने मेरे जीवन के बारे में विस्तारपूर्वक सूचना मांगी है, इसमें मेरी दिलचस्पी नहीं है। एक तो जो कुछ मेरी बाबत जानने योग्य है वह तो 'हूज़ हू' में छप चुका है और उससे अधिक की जरूरत नहीं है। जिन किताबों का आपने हवाला दिया है उनमें मेरे जीवन के कार्य का कुछ ही अंश आपको मिलेगा और मेरा जो सबसे महत्वपूर्ण काम है वह आपको उनमें नहीं मिलेगा। पिछले 10-15 वर्षों में मेरा अधिक समय कला के इतिहास के अध्ययन की अपेक्षा वैदिक और आध्यात्मिक मनन में लगा रहा है। हाल में प्रकाशित अपनी पुस्तकों और लेखों की सूची भेज रहा हूं। मैं चाहूंगा कि आप मेरे कार्य के विषय में तब तक लिखना शुरू न करें जब तक कि इन पुस्तकों और लेखों में से कम से कम कुछ को अवश्य न देख लें। मैंने कुछ महत्वपूर्ण स्थलों पर निशान लगा दिए हैं। मैंने लंदन के प्रकाशक ल्यूजक को लिख दिया है कि वह कला संबंधी मेरे नए लेखों के दो खण्ड आपको भेज दें।

भवदीय,

आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स

बोस्टन 15, मैसैचूसैट्स

अप्रैल, 1946

प्रिय श्री दुरई राजा सिंगम,

मैं कुछ पर्चे भेज रहा हूं जिनमें और पुस्तकों के नाम जोड़ दिए गए हैं और मैं इस्लामी क़ला की विस्तृत सन्दर्भ सूची भेज रहा हूं। गोकि मैं यह जरूरी नहीं समझता हूं कि इस सूची में दी हुई छोटी-छोटी पुस्तकों का भी ज़िक्र किया जाए। मैं चाहूंगा कि आप थोड़ी सी पुस्तकों के नाम और जोड़ें। इस सूची में 'लेडी आफ दी हेयर' की जो समालोचना है वही महत्वपूर्ण लेख है। और शायद नं. 487, 488, 489, 473, 474, 458 और 478 भी अवलोकनीय हैं। मेरी 'फिगर्ज आफ स्पीच ऑर फिगर्ज आफ थाट' पुस्तक ल्यूजक फौरन ही छापने जा रहा है। 'दी रिलीजस बेसिस आफ दी फार्म्स आफ इंडियन सोसाइटी' को ओरियंटालिया, न्यूयार्क प्रकाशित कर रहा है। 'एम आई माई ब्रदर्स कीपर', 'एशियन प्रेस न्यूयार्क से प्रकाशित हो रही है तथा 'ऋग्वेद 10.901. अत्यतिष्ठिद्दशांगुलम्' जर्नल आफ अमेरिकन ओरियन्टल सोसायटी से छप रही है।

भवदीय,

आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्‌स,
मैसैचुसैट्स, वोस्टन
मई, 1946

प्रिय श्री दुरई सिंगम,

आपके कई पत्रों के जवाव में मैं अव यह सूचना दे रहा हूं। मैं आपसे साफ कह देना चाहता हूं कि मेरा जीवन चरित्र लिखे जाने में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मेरी राय में विख्यात पुरुषों के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में विस्तार से छापना लोगों की अवांछनीय उत्सुकता को पूरा करने की आधुनिक प्रकाशकों की अशोभनीय और भद्दी प्रवृत्ति है। इसीलिए मैं अपना समय जो कि मैं महत्वपूर्ण काम में व्यतीत कर रहा हूं उसे अपनी वावत लिखने में नष्ट नहीं करना चाहता। बहुत-सी पुरानी वातें मैं भूल भी चुका हूं। इसलिए मैं आपका आभारी हूंगा अगर आप मेरे विषय में केवल थोड़े से शव्दों में जो कुछ लिखना चाहते हों लिखें। विस्तार में आपको मेरे काम और उस काम की उपादेयता के संवंध में जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और 95 प्रतिशत लेखन मेरे काम की उपयोगिता और उसके महत्व के विषय में होना चाहिए। कहने का तात्पर्य यह कि मुझे आप पीछे छोड़ें केवल मेरे कार्य पर प्रकाश डालें। यह मैं कदापि नहीं चाहूंगा कि आप मेरी प्रशंसा में लिखें और मेरे जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख करें। इसी में वुद्धिमत्ता है। भारतीय ज्ञान गंगा का रस पान कर आप अवश्य ही जान चुके होंगे कि व्यक्तिगत चित्रण अस्वर्ग्य है। मेरा यह कथन किसी प्रकार के विनयाचार का नहीं वल्कि सिद्धान्त का सूचक है।

मेरे कार्य और उसके मूल्यांकन के विषय में आप भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च सोसाइटी पूना से और डा० मरे फाउलर मार्फत मेरियम कम्पनी, स्प्रिंग फील्ड अमरीका से पूछिए। ये दोनों संस्थाएं मेरे काम के विषय में अच्छी तरह से जानती हैं। मैं चाहूंगा कि आपको अपनी कितावों की समालोचना भेज सकूं किन्तु इसमें मेरा बहुत समय लगेगा और इस काम को करने के लिए मेरे पास निजी सहायक नहीं है। मेरी एक और पुस्तक 'ग्रेडेशन एंड इवोल्यूशन' छप रही है।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स,
बोस्टन 15, मैसैचूसैट्स,
13 अगस्त, 1946

प्रिय श्री दुरई सिंगम,

आपने जो मसौदा (ड्राफ्ट) भेजा है उसमें मैं थोड़ी सी शुद्धियां कर देता हूं। इसके अतिरिक्त इसके विषय में मुझे कोई टिप्पणी नहीं करनी है।

'पेरीलस ब्रिज आफ वेलफेयर' मेरी पत्नी का एक लेख है जो कि एच. जे. ए. एस. में छपा है। 'मीटिंग आफ दी आइज' एक लेख है जो कि 'फिगर्स आफ स्पीच ऑर फिगर्ज आफ थाट्स' में छपा है। उक्त पुस्तक आपको ल्यूजक ने भेज दी होगी।

मैं कदापि अपनी आत्मकथा लिखने को तैयार नहीं हूं क्योंकि इसका पहला कारण तो यही है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का गुणगान अस्वर्ग्य है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों से भी मैं उसमें अपना समय नहीं लगा सकता हूं।

जब तुम श्रीलंका जाओ तो वहां के संग्रहालय के पुस्तकालय में 'सीलोन नेशनल रिव्यू' देखना। मुझे इस बात की खुशी है कि जो फोटो मैंने भेजे वे आपको पसन्द आए। मैं दो और भेज रहा हूं। मैं तुम्हारे लड़के को प्रति मास पत्र भेजने का समय नहीं निकाल सकता हूं। मैं अपने लड़के को भी जो इस समय इंग्लैण्ड में तिब्बती भाषा सीख रहा है और जो मार्को पालिस के साथ ही शीघ्र ही सिक्किम जाने वाला है, पत्र नहीं लिख पाता हूं। किन्तु एक पत्र मैं अवश्य लिखूंगा।

मेरी कविता कोई महत्व नहीं रखती है। अधिकांशतः तो वह केवल अनुवाद मात्र है। इनमें से जो सबसे अच्छी है वह 'माडर्न रिव्यू' में छप चुकी है। मार्च 1920 के माडर्न रिव्यू, पृष्ठ 267-68 और 1915 के विद्यापति में छप चुकी है। 'मिस्ट्री आफ महादेव' (1932, आई. ए. एल.) और 'दी टेकिंग आफ टोल' (1915) कोलम्बो के संग्रहालय में पढ़ने को मिल सकते हैं। वहीं तुमको 'थर्टी इंडियन सांग्ज़' टैगोर के प्राक्कथन के साथ मिलेंगे। मुझे तुम्हारा एक पत्र नन्दलाल बसु के रेखाचित्र के साथ मिल गया है। मुझे वह बहुत पसन्द है। क्या तुम मुझे उसकी एक अनुकृति अच्छे कागज पर भेज सकोगे। लेकिन उसको मोड़ना नहीं। भारतीय शब्द जो मैंने वैब्सटर

डिक्शनरी के लिए लिखे हैं वे अलग नहीं छपे हैं। वे शब्द वैब्सटर के आखिरी संस्करण में छपे हैं। फ्रीडून कबराजी, 21 प्रिमरोज हिल रोड, लन्दन एन. डब्ल्यू. 3 मेरी भारतीय कविताओं का संग्रह प्रकाशित कर रहा है।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

....

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स,
बोस्टन, मैसैचूसैट्स
अक्टूबर 26, 1946

प्रिय श्री दुरई राजा सिंगम,

आपके 17 अक्टूबर के पत्र के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि स्पष्टत: कला के विषय में गांधीजी के जो विचार हैं, मैं उनसे सहमत हूं। लेकिन कला के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ लिखा है उसमें और गांधीजी के विचारों में समानता खोजने में कोई लाभ नहीं। मुझे गांधीजी पर अपार श्रद्धा है और गांधीजी तथा भारतन कुमारप्पा के औद्योगीकरण के सम्बन्ध में तथा ग्राम संरक्षण के सम्बन्ध में जो विचार हैं, उनसे भी मैं सहमत हूं। किन्तु जो कुछ गांधीजी कहते हैं, वे उनके अपने विचार हैं और कला के विषय में उनके अपने अनोखे विचार हैं। अक्सर गांधीजी यह भूल जाते हैं कि वह कह क्या रहे हैं और किस विषय में कह रहे हैं। अधिकांश वह यह मानते प्रतीत होते हैं कि कला चित्रकारी मात्र है जो कि एक बचकानी बात है। किन्तु वास्तव में भारतीय दृष्टिकोण से और सभी परम्पराओं के दृष्टिकोण से कला के अन्तर्गत जगत का समस्त रचना विधान आ जाता है और इस प्रकार भारतीय क्रिया-कलापों का आधा भाग कला से सम्बद्ध है जबकि शेष आधा भाग आचार-व्यवहार से सम्बद्ध है। इसलिए मैं जो कुछ कला के सम्बन्ध में कहता हूं, वे मेरे अपने व्यक्तिगत विचार नहीं हैं। मेरे वे विचार श्रुति, स्मृति और कला विज्ञान पर आधारित हैं। उदाहरणत: महात्माजी के जो विचार गहनों के पहनने के विषय में हैं, उनके विषय में मैंने 'फिगर्स आफ स्पीच' में लिख दिया है। उनको चाहिए था कि वह भले और बुरे आभूषणों के बीच का भेद समझते। वह तो सिर्फ यह चाहते हैं कि सब लोग गहना पहनना छोड़ दें। यह उनकी व्यक्तिगत वैराग्य की भावना है जिसमें वह सबको बांधना चाहते हैं।

उनका वैराग्य उनके लिए ठीक है। संन्यास का मैं स्वयं सबसे बड़ा समर्थक हूं, किन्तु गांधीजी कुछ हद तक प्रत्येक व्यक्ति से सादगी और त्याग की आशा करने की गलती करते हैं। इससे वे सब बुराइयां पैदा होती हैं जो अपरिपक्व अवस्था में वैराग्य धारण करने के फलस्वरूप अवश्यंभावी हैं। कृष्ण भी इस बात को नहीं चाहते कि सब लोग उनकी गीता में व्यक्त भावनाओं का अनुसरण करें। गांधीजी के सौन्दर्य और कला के विषयक विचार विक्टोरियन युग के हैं। मैं महात्मा गांधी की कला सम्बन्धी अनेक बातों से सहमत हूं किन्तु उनकी कला सम्बन्धी मूलभूत धारणा से सहमत नहीं हूं।

गांधीजी संत हैं न कि महान बुद्धिवादी विचारक। मैं इन दोनों में से एक भी नहीं हूं। किन्तु मैं यह कहने का अवश्य साहस कर सकता हूं कि जिन विचारवान पुरुषों के विचारों के आधार पर मैं बोलता हूं वे बहुधा संत भी थे और बुद्धिवादी भी।

मैं फिर तुमको सूचित करना चाहता हूं कि मेरे पास तुम्हारे लड़के को सिखाने के लिए समय नहीं है, मगर उसे चाहिए कि वह मुझे स्वयं लिखे।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्‌स
बोस्टन 15, मैसैचूसैट्स
सितम्बर 12, 1946

प्रिय श्री दुरई राजा सिंगम

डा. सामोनी का पता इस प्रकार है :

इन्स्टीट्यूट आफ फाइन आर्टस्,
17 ईस्ट, 80 वीं स्ट्रीट
न्यूयार्क।

(ग्रीष्मकाल में वह यूरोप में रहे।)

भारत और श्रीलंका पर सामग्री तुम्हें सीलोन नेशनल रिव्यू में मिलेगी। मेरे पुत्र का पता अनिश्चित है। अतिथि के निश्चय होते ही वह मार्को पालिस के साथ सिक्किम चला जाएगा।

आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स,
बोस्टन, मैसैचूसैट्स
जुलाई 21, 1947

प्रिय राजा सिंगम,

मैं चाहूंगा कि यत्र-तत्र कुछ शुद्धियों के साथ तुम अपना लेख, जो तुमने कला के ऊपर लिखा है, उसको उसी तरह से छपने दो जैसा कि तुमने लिखा है। अगर तुम चाहो तो इस विषय में तुम मेरी सम्मति जो मैं नीचे दे रहा हूं, प्रकाशित कर सकते हो।

अन्तिम पृष्ठ में शब्द सौंदर्यवाद (एस्थेटिज्म) का गलत प्रयोग किया गया है, क्योंकि शब्द सौंदर्यप्रेमी (एस्थीट) की तरह उसके भी सदा बुरे अर्थ लगाए जाते हैं। इसके विपरीत सौंदर्य (एस्थेटिक) अथवा सौंदर्यशास्त्र (एस्थेटिसिज्म) आदि शब्दों का प्रयोग अच्छे अर्थों में होता है। यह सही नहीं है कि मैं सौंदर्यवाद को जीवन का अंतिम ध्येय मानता हूं। रस्किन का कहना है कि कलाविहीन उद्योग मात्र बर्बरता है। इस तरह से सन्त टोमस एकीनास ने भी कहा है: कलाविहीन सभी प्रयास अनुपयोगी हैं। मेरा मत भी इन सज्जनों से मिलता हुआ है। हमारा सृजनहार सृजनकर्ता के रूप में अपने अनुरूप ही मनुष्य को गढ़ता है अर्थात् मनुष्य को दैवी स्वभाव से सम्पन्न बनाता है। जब हम कहते हैं कि कला प्रकृति का प्रतिबिम्ब है तो उसका यही अर्थ होता है कि संसार की रचना-प्रक्रिया दैवी स्वभाव के अनुरूप ही होती है। मानव-जीवन में कला का क्या स्थान है, इसके विषय में भारतन कुमारप्पा की मान्यता उनकी पाण्डित्यपूर्ण पुस्तक 'पूंजीवाद, समाजवाद अथवा ग्राम्यवाद' में व्यक्त होती है और अपनी अर्थवत्ता में गांधीजी से कहीं अधिक गहरी प्रतीत होती है क्योंकि गांधीजी उन विषयों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने में तनिक भी नहीं हिचकते, जिनके बारे में वास्तव में उन्हें कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स,
बोस्टन 15, मैसैचूसैट्स
अगस्त 11, 1947

प्रिय राजा सिंगम,

आपके 31-7-1947 के पत्र के लिए धन्यवाद। पत्र के साथ आपने पंडित एन. के. भारती की कविता का प्रूफ भेजा है। मुझे आशा है कि इस कविता में मात्र मेरे कला संबंधी लेखों की प्रशंसाएं नहीं हैं क्योंकि मेरे कविता-जीवन के उत्तरकाल का कार्य पहले के कला संबंधी कार्य से कहीं अधिक मूल्यवान है। यद्यपि उत्तरकाल के कार्य का भी सम्बन्ध कला से ही है।

मेरे जन्म दिन के भोज की तिथि बदलकर अक्टूबर हो गई है। तब तक आपको अपनी पुस्तक की पूरी प्रति भेज सकूंगा। यह पुस्तक इस पते पर भेजी जाए:–नाशी हीरामैनक, 332-575, न्यूयार्क।

मैं चाहता हूं कि पृष्ठ 15 पर आप इन शब्दों को निकाल दें:–'इन ए वेरी हम्बल वे'। अगर उस पुस्तक में पं. भारती की कविता आनी है, तो मेरी राय में वह सबसे पहले उद्धृत की जाए और उसके बाद आर. ए. पारकर का लेख 'एम आई माई ब्रदर्स कीपर' सम्मिलित किया जाए। अगर तुम इस पुस्तक में पुस्तक-सूची देना चाहो, तो उसमें मेरी नई पुस्तक 'टाइम एण्ड एटर्नटी' एस्कोना स्विटज़रलैंड, 1947 भी दें।

मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि 15 अगस्त के 'हिन्दू' मद्रास में 'रिनेसेंस आफ इंडियन कल्चर' लेख निकलने वाला है।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्‌स,
बोस्टन, 15, मैसैचूसैट्स
अगस्त 22, 1947

प्रिय राजा सिंगम,

मैं अपने दो भाषण भेज रहा हूं। उनमें से एक में अय्यर फ्रिस्टोक्रिफ्ट का जिक्र है। अक्तूबर में न्यूयार्क में एक दूसरा भोज होगा जो कि पहले से और बड़ा होगा। उसमें मैं तुम्हारे फ्रिस्टोक्रिफ्ट का उल्लेख करूंगा। मुझे आशा है कि तब तक तुम अपनी पुस्तक की एक डमी भेज सकोगे। मेरे पास अय्यर की पुस्तक के बड़े डिनर की डमी मौजूद है। मेरा जो दूसरा भाषण है, वह मैंने उस अवसर पर दिया था जो अमरीका में बसे हुए भारतीय विद्यार्थियों ने 15 अगस्त को भारत की आजादी के उपलक्ष में मनाया था। मुझे आशा है कि वह 'हिन्दू' में छपेगा।

प्रश्न : मैं जानना चाहता हूं कि दीनबन्धु एन्ड्रयूज ने भारतवर्ष के लिए जो कुछ किया, उसके विषय में तुम्हारा क्या खयाल है।

उत्तर : इसके विषय में मैं अधिक नहीं कह सकता हूं। दमन के विरुद्ध श्री एन्ड्रयूज ने जोरदार अभियान किया। किन्तु भारतीय कला और धर्म को वह कहां तक समझे थे और दोनों विषयों पर उनकी पकड़ थी अथवा नहीं इसमें मुझे संदेह है। उनकी मनोवृत्ति पाश्चात्य थी।

प्रश्न : वर्तमान स्थिति में भारत और जावा, मलाया, स्याम, कम्वोदिया और सीलोन के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध कैसे बढ़ सकते हैं? किसी समय ये देश समान हिन्दू संस्कृति से एक सूत्र में बंधे थे।

उत्तर : शिक्षा में प्रोफेसर और विद्यार्थियों के आदान-प्रदान द्वारा। और भारतीय सांस्कृतिक इतिहास के व्यापक तत्वों के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध करके। साथ ही दिल्ली में जो अखिल एशियाई सम्मेलन हुआ था, उसके उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए नए सम्पर्क स्थापित करके।

प्रश्न : भावी नवीन एशिया के निर्माण में अपने संबंध मजबूत करने के लिए भारत और श्रीलंका को क्या उपाय करने चाहिए ?

उत्तर : शिक्षा के क्षेत्र में तो जैसा कि ऊपर कह दिया गया है, अध्यापकों और विद्यार्थियों का आदान-प्रदान करके और राजनीतिक दृष्टि से आपसी हित में समान सुरक्षा-नीति निर्धारित करके।

प्रश्न : क्या आप निकट भविष्य में भारत और लंका पधारेंगे जहां बहुत-से लोग आपके दर्शनों को उत्सुक हैं?

उत्तर : मेरी पत्नी और मैंने यह निश्चय कर लिया है कि हम अपने जीवन का शेष भाग अन्तिम समय उत्तर-भारत में कहीं बस कर व्यतीत करेंगे और यह हम 1948 के अन्त तक कर सकेंगे। हमारा लक्ष्य वानप्रस्थ में एकांत जीवन व्यतीत करने का है। मैं किसी सार्वजनिक समारोह या अधिवेशनों में भाग नहीं लूंगा, किन्तु जो व्यक्तिगत रूप से मुझसे भेंट करना चाहेंगे सहर्ष मेरे पास आ सकेंगे।

प्रश्न : हमारे सपनों के नवीन भारत के विषय में आपका क्या सन्देश है?

उत्तर : "अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ।" महात्मा गांधी, भारतन कुमारप्पा, गुण्डप्पा, अबुल कलाम आजाद, अब्दुल गफ्फारखां और श्री रमण महर्षि का अनुकरण करो। निम्नलिखित लोगों को अपना सहयोग दो : अर्ल आफ पोर्ट्‌स माउथ, जार्ज बौर्न, विलीफ्रिड वैलाक, जीन ज्यानो, फरनाडो नौबरो। निम्न स्तर के दार्शनिकों की ओर ध्यान न दो। धोखे में पड़ने से बचो क्योंकि दूषित संवाद सद्प्रवृत्तियों को बिगाड़ देते हैं।

प्रश्न : भारत की स्वतंत्रता को अहिंसा के द्वारा प्राप्त करने के गांधीजी के प्रयत्नों के संबंध में आपकी क्या राय है?

उत्तर : इस दिशा में मेरी गांधीजी के कार्य के प्रति बहुत श्रद्धा है। महात्मा गांधी ने भारतवासियों को उनके बहुत प्राचीन आदर्श सत्याग्रह का अनुकरण करने की सलाह दी है। यह बहुत बड़ी बात है। और इस प्रकार महात्मा गांधी न केवल भारत के ही गुरु हैं, वरन् जगत गुरु हैं। क्योंकि अहिंसा, जैसा कि उनको स्वयं मालूम है प्रत्यक्ष हिंसात्मक गतिविधियों का निषेध मात्र नहीं है। अहिंसा का अर्थ है आन्तरिक शान्ति पा लेना अर्थात अन्तरात्मा की प्रेरणा का अनुसरण करना। बहिरंग व्यक्तित्व अथवा अहम् में ही आक्रमणकता निहित है।

दुरई राजा सिंगम के पुत्र (गांधीजी की जय सिंगम) का पत्र आनन्द कुमारस्वामी के लिए

वड्डूकोडई, जाफना
जनवरी 4, 1947

पूज्य गुरु,

मेरे पिताजी आपके विषय में बहुत रोचक कहानियां सुनाते हैं कि आप ईश्वर के कैसे और कितने भक्त हैं। चूंकि मैंने उनसे सुना है कि आप सत्य के कितने व्यापक उपासक रहे हैं इसलिए मैं आपकी ओर इस भावना से देखता हूं कि आप बालकों के परम गुरु हैं। मेरा जन्म और लालन-पालन अपने पूर्वजों के जन्म-स्थान श्रीलंका से बहुत दूर मलाया में हुआ है। मैं अपना बड़ा सौभाग्य समझूंगा यदि आप कृपया मेरे लिए कभी-कभी पत्र लिखें और उनके द्वारा मुझे ऐसी शिक्षा दें जिससे मैं उस नाम के योग्य बन सकूं जो मेरे पूज्य पिता ने मुझे दिया है।

मुझे पूर्ण आशा है कि आप मुझे ऐसा आशीर्वाद देंगे कि मैं सत्य और धर्म के पथ पर चल सकूं।

मैं हूं आपका सेवक,
गांधीजी की जय सिंगम

म्युजियम आफ फाइन आर्ट्स
बोस्टन, 17 जनवरी, 1947

प्रिय गांधीजी की जय,*

मुझे आपका 20-11-46 का पत्र मिल गया है। मालूम होता है तुम मेरे पत्र का इन्तजार कर रहे होगे। लेकिन तुमको इस बात का पता नहीं होगा कि मैं काम में कितना व्यस्त हूं। मैं अपने निजी कामों को नहीं कर पा रहा हूं और पत्रों का उत्तर देना तो दूर की बात है। हम दोनों छः बजे उठते हैं, 10 बजे तक टाइप करते हैं और तब हम दोनों संग्रहालय में चले जाते हैं जहां हम साढ़े चार बजे तक रहते हैं और फिर घर आकर साढ़े सात बजे से साढ़े नौ बजे रात तक काम करते हैं। और इसके साथ ही कुछ घर का काम भी धीरे-धीरे होता रहता है। गर्मी के दिनों में बाग में लिखने-पढ़ने का काम भी करते हैं। हमारे पास कोई नौकर नहीं है, घर पर सब काम हम स्वयं करते हैं। हमारा लड़का राम पुनम्बलम (उम्र 17 वर्ष) तिब्बती भाषा सीख रहा है और वह दो वर्ष सिक्किम में रहना चाहता है। वह मार्को पालिस के साथ सिक्किम जा रहा है। मुझे आशा है तुमने उसकी पुस्तक "पीक्स एंड लामाज़" पढ़ी होगी।

मैंने तुम्हारे पिता को उस सम्मेलन की रिपोर्ट भेजी है जो कि केनियन कालेज में हुई थी। वह उनको अच्छी लगेगी। सम्मेलन में हुए भाषण बाद में छपेंगे भी।

मैं तुमको यह सलाह देता हूं कि तुम अच्छी तरह से तमिल और संस्कृत सीखो और जितनी किताबें पढ़ सको, पढ़ो। क्या तुम्हारा इरादा श्रीलंका विश्वविद्यालय जाने का है। हमको बहुत सारे हिन्दुस्तानी विद्यार्थी मिलते हैं। उनमें ज्यादातर इंजीनियर हैं। मगर वे अपने मुल्क के बारे में कुछ नहीं जानते हैं। अमरीकियों को यह बहुत अजीब लगता है। यह सच है कि पाश्चात्य सभ्यता एक संगठित बर्बरता से भिन्न कुछ भी नहीं है और हमारे भारतीय विद्यार्थी जो कि पाश्चात्य विचारों में पिछलग्गू हैं वे भी असंगठित बर्बरता के प्रतीक हैं। मुझे उम्मीद है कि तुम वैसे नहीं बनोगे। मैं चाहूंगा कि जो कुछ तुम करो उसे अच्छी तरह से करो।

सप्रेम और आशीर्वाद के साथ
आनन्द कुमारस्वामी

---

*दुरई राजा सिंगम ने अपने पुत्र का नाम 'गांधीजी की जय' रखा था।

(आनन्द कुमारस्वामी का अमरीका से दुरई राजा सिंगम के नाम अंतिम पत्र)

म्यूजियम आफ फाइन आर्ट्स
बोस्टन 15, मैसैचुसैट्स
2 सितम्बर, 1947

प्रिय दुरई राजा सिंगम,

मैंने 15 अगस्त के अधिवेशन की कुछ रिपोर्ट डाक से भेज दी है। मैं चाहूंगा कि तुम नंदलाल बसु के उस चित्र* की मूल प्रति भेजो जो उन्होंने ठाकुर बंधुओं के घर पर खींचा था। वह किसके पास है ?

भारतन कुमारप्पा की पुस्तकों का अध्ययन अवश्य करना।

भवदीय,
आनन्द कुमारस्वामी

---

* मूल रेखाचित्र नंदलाल वसु ने मेरे 'गारलैंड आफ ट्रिब्यूट्स' के लिए तैयार किया था जो आनन्द कुमारस्वामी की 70 वीं वर्षगांठ के अवसर पर छपा था। उस चित्र को दुरई राजा सिंगम ने, जिनके पास वह चित्र था, हवाई जहाज से 8 सितम्बर, 1947 को आनन्द कुमारस्वामी के पास भेजा जो उनकी मृत्यु के एक दिन पूर्व पहुंचा। अब वह असली चित्र कहां है, पता नहीं। मुझे मालूम हुआ है कि बोस्टन ललित कला संग्रहालय में एक बड़ा सुन्दर वुडकट नंदलाल का बनाया हुआ मौजूद है जिसमें तीनों ठाकुर बंधु कुमारस्वामी के साथ उपस्थित हैं। ये चित्र मेरी दोनों पुस्तकों 'आनन्द कुमारस्वामी—ए गारलैंड आफ ट्रिब्यूट्स' और 'होमेज टु आनन्द कुमारस्वामी' में छप चुके हैं। इस रेखाचित्र के बनने का समय सन् 1910 या 1911 का एक दोपहर है जबकि नंदलाल बसु आनन्द कुमारस्वामी से कला के विषय में वार्तालाप कर रहे थे। उसमें और जो तीन व्यक्ति हैं वे प्रसिद्ध ठाकुर बंधु—समरेन्द्रनाथ ठाकुर, गगनेन्द्र नाथ ठाकुर और अवनीन्द्र नाथ ठाकुर हैं।

—दुरई राजा सिंगम

परिशिष्ट - 2

पाश्चात्य देशों को संदेश

पाश्चात्य देश सदियों की कर्मण्यता, उद्योग, परिश्रम और लगन द्वारा भौतिक वैभव और सुख तथा भोग विलास की पराकाष्ठा पर पहुंच चुके हैं। अब भविष्य में क्या होगा ? व्यापार और उद्योग धंधों द्वारा जो भौतिक उन्नति पाश्चात्य देश कर चुके हैं वह आगे उन्हें कहां ले जाएगी। यह विचारणीय है। उनकी स्थिति डांवाडोल हो रही है। इंग्लैंड को ही ले लीजिए– वहां के निवासियों का दसवां भाग आज जेलों, गरीब खानों (वृद्धावस्था के लोगों के आश्रमों) और पागलखानों में समय व्यतीत कर रहे हैं। वे सब आधुनिक वैभव की देन हैं।

गरीबी और अमीरी के बीच की खाई दिनोंदिन चौड़ी होती जा रही है। कामगार और पूंजीपतियों के रहन-सहन, आय-व्यय के बीच की सीमा बढ़ रही है। जिन अमीर लोगों को ऐशोआराम अधिकाधिक प्राप्त होते जा रहे हैं, वे आगे कहां जायेंगे ? स्थिति भयंकर होती जा रही है।

अस्तु पाश्चात्य देशों को, पूर्वी देशों, खासकर भारतवर्ष से सबक सीखना है। भारतीय सभ्यता, दर्शनशास्त्र, जीवन आदर्शों, धर्म और नीति तथा कला से पाश्चात्य देशों को प्रेरणा मिल सकती है। पूर्वी देशों में स्थानीय भिन्नता होते हुए भी उनके जीवन आदर्श और लोक सेवा की भावनाओं में समानता है। पूर्वी और भारतीय संस्कृति, सभ्यता और नैतिक जीवन का सदैव ध्येय रहा है—प्राणी मात्र की सेवा करना, मानव जीवन की एकता और समानता को ध्यान में रखना। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रसार और नकलबाजी ने पूर्वी देशों में शांति और सुन्दर सादगी वाले जीवन में विग्रह और विप्लव पैदा कर दिया है। सौ साल की पाश्चात्य विचारधारा और भौतिकवादी आदर्शों ने पूर्वी देशों की कला, सौंदर्यप्रियता तथा उनके शांतिमय और नैतिक जीवन पर बहुत आघात किया है। पूर्वी देशों की मान्यताएं और आदर्श नष्ट हो गये

हैं। पाश्चात्य देशों की क्रांति और राजनैतिक विप्लवों का प्रभाव पूर्वी देशों पर सन्तोषजनक नहीं पाया गया है। पाश्चात्य चमक-दमक व बाहरी आडम्बर की नकल करके अपनी आध्यात्मिक मान्यताओं और सौंदर्य व शांतिप्रियता के जीवन को खो बैटना तो पतन का ही द्योतक है।

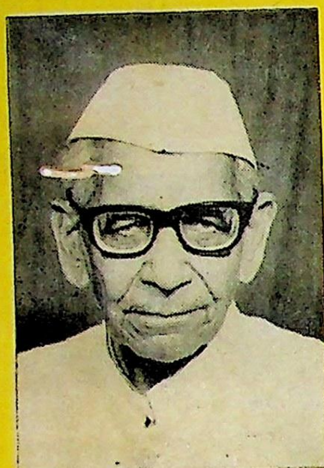
सारे संसार का नैतिक और आध्यात्मिक पथ दर्शक भला और कौन हो सकता है? यदि तुम्हारी यह धारणा जारी रही कि पाश्चात्य सभ्यता अनुकरणीय और उत्तम है और पूर्वी समाज असभ्य है तो फिर मानव जाति का उत्थान कौन करेगा? मनुष्य जाति की सेवा कौन करेगा? स्मरण रहे कि भारतीय राष्ट्र का आदर्श है "सेवा", सबकी सेवा करना न कि सांसारिक वैभव का उपभोग करना। तुम्हारी महानता इसमें है कि तुम मानव जाति की नैतिक उन्नति और संस्कृति को और कितना ऊंचा उठा सकते हो, कितनी उन्नति उसमें कर सकते हो।

भारतवर्ष और पूर्वी देशों को स्वतन्त्रता पूर्वक अपने राष्ट्रीय सांस्कृतिक आदर्शों को अपने व्यवहार अर्थात् जीवनवृत्त द्वारा संसार के सामने रखना चाहिए। अपने व्यक्तिगत जीवन, धर्म, और व्यवहार द्वारा भारतीय जीवन-आदर्श, आध्यात्मिक आदर्श और नीति को पाश्चात्य देशों के सामने रखना है। इसलिए मैं कहता हूं, अभी समय है। जागृत हो। संभलो। वरना सदा के लिए अपने आदर्श और संस्कृति को खो बैठोगे। संसार के नैतिक जीवन का सार तुम भारतीय और पूर्वी देशों के लोग ही हो। यदि यह नैतिक जीवन तुम भी खो बैठोगे तो मानव समाज का नैतिक नेतृत्व कौन करेगा? खूबी तो इसमें है कि तुम खुद मानव सभ्यता को कितना बढ़ावा दे सकते हो, न कि इसमें कि तुम खुद पाश्चात्य देशों की कितनी नकल कर सकते हो। याद रखो कि पाश्चात्य देशों के बाह्याडम्बर और तड़क-भड़क की नकल करना उचित नहीं। और न ही यह हमारा ध्येय होना चाहिए। हमें तो स्वयं संसार की सभ्यता को और आगे बढ़ाना है। एक बात और याद रखने की यह कि जैसा कृष्ण ने कहा है, अपना कर्तव्य या काम छोटा क्यों न हो पर वह उत्तम है बनिस्बत दूसरों की नकल कर बड़े काम करने से।

पाश्चात्य देश अंत में हमारे आचार, धर्म, आदर्श और नीति की कदर करेंगे। और उन्हें अपनायेंगे। जितनी जल्दी पाश्चात्य देश पूर्वी अध्यात्मवाद और संस्कृति को अपनायेंगे उतना ही अधिक उनका लाभ होगा।

हमारे ऋषियों के उच्च विचार, भावनाएं और आदर्श जो उन्होंने शास्त्रों में व्यक्त किये हैं, यदि वे हमारे व्यावहारिक जीवन और दिनचर्या में सम्पन्न न हों तो गुरुजनों का धार्मिक और नैतिक परिश्रम निष्फल और व्यर्थ होजायगा। हमारा यह बहुत बड़ा दायित्व है कि उनके आदर्श, नीति और उपदेशों के आधार पर जीवनयात्रा को सफल करें अर्थात् उनका अनुकरण करें। हमारे सामने दो आदर्श हैं––बौद्धिक और आध्यात्मिक दासता तथा बौद्धिक और आध्यात्मिक सेवा भाव। एक में नैतिक पतन है, दूसरे में नैतिक जीवन है।


185428


मुकन्दी लाल

93 वर्षीय बैरिस्टर मुकन्दीलाल जिनमें अभी तक नवयुवकों जैसी क्षमता और उत्साह है, कलागुरु आनन्द कुमार स्वामी के जीवित दो शिष्यों में से एक हैं। बैरिस्टर साहब को भारत में भी और इंग्लैण्ड में भी आनन्द कुमार स्वामी के निकट सम्पर्क में रहने का गौरव प्राप्त है। कलागुरु के दूसरे जीवित शिष्य इंडोनेशिया के दुरई राजा सिंगम हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने कलागुरु आनन्द कुमारस्वामी की बहुमुखी प्रतिभा का बड़े रोचक ढंग से वर्णन किया है। लेखक ने बताया है कि किस प्रकार आनन्द कुमारस्वामी ने भारतीय कला को संसार के सम्मुख प्रतिष्ठित किया और किस प्रकार वह सच्चे अर्थों में भारतीय वैदिक परम्परा के संदेश वाहक ऋषि एवं युगपुरुष थे।


प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार